मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 37 ● वर्ष 4 ● अंक 10 ● दिसम्बर 2014 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

"अच्छे दिनों" में थैलीशाहों की हुई चाँदी सार्वजनिक उपक्रमों को बेचने की मुहिम 8

1984 के ख़ूनी वर्ष के 30 साल 11

मोदी सरकार : कुछ वैज्ञानिक भविष्यवाणियाँ! 16

ब्रिस्बेन में जी20 शिखर सम्मेलन में विश्व पूँजी के मुखियाओं का "चिन्तन-शिविर"

साम्राज्यवादी संकट के समय में सरमायेदारी के सरदारों की साज़िशें और सौदेबाज़ियाँ और मज़दूर वर्ग के लिए सबक

सम्पादक मण्डल

बीते 14-15 नवम्बर के सप्ताहान्त में ऑस्ट्रेलिया के ब्रिस्बेन शहर में नौवाँ जी20 शिखर सम्मेलन हुआ। जी20 सम्मेलन में दुनिया के बीस सबसे शक्तिशाली देशों के मुखिया इकट्ठा होते हैं और विश्व पूँजीवादी व्यवस्था की सेहत और बेहतरी के बारे में मगजपच्ची करते हैं। साथ ही, वे आपसी झगड़ों और विवादों पर भी सिर लड़ाते हैं। इस बार जी20 सम्मेलन के एजेण्डा में वैश्विक संकट और बिगड़ते पर्यावरणीय सन्तुलन को सबसे ऊपर रखा गया था। सम्मेलन ख़त्म होने पर विश्व के बीस बड़े पूँजीवादी देशों के प्रमुखों या उनके प्रतिनिधियों ने एक साझा बयान भी जारी किया। इस बयान को पढ़कर ही लग जाता है कि वैश्विक संकट और पर्यावरण के बारे में उनकी चिन्ताओं की जड़ में और कुछ नहीं बल्कि पूँजीपति वर्ग का मुनाफ़ा और साम्राज्यवाद के हित हैं। इस पर हम आगे बात रखेंगे, लेकिन पहले इस सवाल पर साफ़ नज़र हो लेना चाहिए कि **भारत में हम मज़दूर भला जी20 शिखर सम्मेलन के बारे में क्यों चिन्तित हों?**

हम मज़दूर जी20 शिखर सम्मेलन के बारे में दिमाग़ क्यों खपायें?

आपके मन में यह प्रश्न उठना लाज़िमी है कि भारत से लगभग 10 हज़ार मील दूर ऑस्ट्रेलिया देश के ब्रिस्बेन शहर में अगर दुनिया की 20 बड़ी आर्थिक ताक़तों के मुखिया इकट्ठा हुए हों तो हम इसके बारे में क्यों सोचें? हम तो अपनी ज़िन्दगी के रोज़मर्रा की जद्दोजहद में ही ख़र्च हो जाते हैं। तो फिर नरेन्द्र मोदी दुनिया के बाक़ी 19 बड़े देशों के मुखियाओं के साथ क्या गुल खिला रहा है, हम क्यों मगजमारी करें? लेकिन यहीं पर हम सबसे बड़ी भूल करते हैं। वास्तव में, हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में हमें जिन परेशानियों का सामना करना पड़ता है, वे वास्तव में यहाँ से 10 हज़ार मील दूर बैठे विश्व के पूँजीपतियों के 20 बड़े नेताओं की आपसी उठा-पटक से करीबी से जुड़ी हुई हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि नरेन्द्र मोदी द्वारा श्रम क़ानूनों को बरबाद किये जाने का कुछ रिश्ता दुनिया के साम्राज्यवादियों की इस बैठक से भी हो सकता है? क्या आपने सोचा है कि अगर कल को आपको आटा, चावल, दाल, तेल, सब्ज़ियाँ दुगुनी महँगी मिलती हैं, तो इसका कारण जी20 सम्मेलन में इकट्ठा हुए पूँजी के सरदारों की आपसी चर्चाओं में छिपा हो सकता है? क्या आपको इस बात का अहसास है कि अगर कल सरकारी स्कूल बन्द होते हैं या उनकी फ़ीसें हमारी जेब से बड़ी हो जाती हैं तो इसके पीछे का रहस्य जी20 में बैठे सरमायेदारों के सरदारों की साज़िशों में हो सकता है? क्या हमने कभी सोचा था कि अगर कल बचा-खुचा स्थायी रोज़गार भी ख़त्म हो जाता है और मालिकों और प्रबन्धन को हमें जब चाहे काम पर रखने और काम से निकाल बाहर करने का हक़ मिल जाता है तो इसमें जी20 में लुटेरों की बैठक का कोई योगदान हो सकता है? सुनने में चाहे जितना अजीब लगे, मगर यह सच है!

आज अगर नरेन्द्र मोदी श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर रहा है, सरकारी कल्याणकारी योजनाओं को समाप्त कर रहा है, बची-खुची पब्लिक सेक्टर कम्पनियों को औने-पौने दामों पर निजी हाथों में सौंप रहा है, क़ीमतें बढ़ा रहा है और मज़दूरों के हर आन्दोलन का खुलेआम दमन करवा रहा है, तो इसका कारण यह है कि नरेन्द्र मोदी देशी और विदेशी पूँजी की सेवा में दिलोजान से लगा हुआ है और जी20 सम्मेलन में भी उसने देशी-विदेशी पूँजी के सामने हम मज़दूरों को लूटने-खसोटने का खुला न्यौता रखा है; मोदी ने देशी-विदेशी पूँजी से वायदा किया है कि भारत में हमें गुलाम बनाकर मुनाफ़ा पीटने के रास्ते में जितनी बाधाएँ हैं, वे ख़त्म कर दी

(पेज 9 पर जारी)

गीता प्रेस – धार्मिक सदाचार व अध्यात्म की आड़ में मेहनत की लूट के ख़िलाफ़ मज़दूर संघर्ष की राह पर

धर्म बहुत लम्बे समय से अनैतिकता, अपराध, लूट व शोषण की आड़ बनता रहा है। परन्तु मौजूदा समय में गलाजत, सड़ान्ध इतने घृणास्पद स्तर पर पहुँच चुकी है कि धर्म की आड़ से गन्दगी पके फोड़े की पीप की तरह बाहर आ रही है। आसाराम, रामपाल जैसे इसके कुछ प्रातिनिधिक उदाहरण हैं। इसी कड़ी में धर्म और अध्यात्म की रोशनी में मज़दूरों की मेहनत की निर्लज्ज लूट का ताज़ा उदाहरण गीता प्रेस, गोरखपुर है। कहने को तो गीता प्रेस से छपी किताबें धार्मिक सदाचार, नैतिकता, मानवता आदि की बातें करती हैं, लेकिन गीता-प्रेस में हड्डियाँ गलाने वाले मज़दूरों का ख़ून निचोड़कर सिक्का ढालने के काम में गीता प्रेस के प्रबन्धन ने सारे सदाचार, नैतिकता और मानवता की धज्जियाँ उड़ाकर रख दिया है। संविधान और श्रम क़ानून भी जो हक़ मज़दूरों को देते हैं वह भी गीता प्रेस के मज़दूरों को हासिल नहीं है! क्या इत्तेफ़ाक है कि गीता का जाप करनेवाली मोदी सरकार भी सारे श्रम क़ानूनों को मालिकों के हित में बदलने में लगी है। इसी माह प्रबन्धन के अनाचार, शोषण को सहते-सहते जब मज़दूरों का धैर्य जवाब दे गया तो उनका असन्तोष फूटकर सड़कों पर आ गया।

'बिगुल मज़दूर दस्ता' के कार्यकर्ताओं को गीता प्रेस के मज़दूरों ने बताया कि गीता प्रेस में काम करने वाले लोगों की संख्या लगभग 500 हैं। जिनमें 185 नियमित परमानेण्ट हैं और लगभग 315 ठेका और कैजुअल पर काम करते हैं। मज़दूर प्रबन्धन से लम्बे समय से माँग कर रहे थे कि शासनादेश दिनांक 24.12.06 जारी होने के बाद न्यूनतम मज़दूरी से अधिक पाने वाले मज़दूरों के मूल वेतन का निर्धारण शासनादेश के पैरा-6 के अन्तर्गत किया जाये। प्रदेश सरकार द्वारा स्पष्ट रूप से आदेश किया गया है कि शासनादेश जारी होने के पूर्व यदि किसी कर्मचारी का वेतन न्यूनतम पुनरीक्षित वेतन से अधिक है, तो इसे जारी रखा जायेगा तथा इसे उक्त न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मज़दूरी माना जायेगा।

लेकिन गीता प्रेस के प्रबन्धन द्वारा सभी कर्मचारियों के मूल वेतन को दो भागों में बाँटकर - एक भाग सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मूल वेतन तथा दूसरे भाग में न्यूनतम से अधिक वेतन को एडहाक वेतन के अन्तर्गत रखा गया और इस एडहाक मूल वेतन पर कोई महँगाई भत्ता नहीं दिया जाता। किसी भी न्यूनतम पुनरीक्षित वेतन शासनादेश में एडहाक वेतन निर्धारण नहीं है। गीता प्रेस द्वारा मूल वेतन पर महँगाई भत्ता न देना पड़े इससे बचने के लिए मूल वेतन के हिस्से में कटौती करके कुछ भाग एडहाक में शामिल कर दिया गया। गीता प्रेस का प्रबन्धन शासनादेश का सीधा उल्लंघन कर रहा है।

जबकि गीता प्रेस, गोरखपुर की अनुषंगी शाखा ऋषिकेश स्थित गीता भवन में उत्तरांचल सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम वेतन से अधिक सुविधा वहाँ के कर्मचारियों को दी जाती है जिसमें - 1000 रुपये आवास भत्ता, 10 प्रतिशत वार्षिक वेतन वृद्धि और 100 रुपये स्पेशल वार्षिक वेतन वृद्धि शामिल है। गीता प्रेस के मज़दूरों का कहना था कि हमारे साथ यह धोखाधड़ी क्यों की जा रही है। यह हमारा हक़ है और हमारी माँग है कि हमारा हक़ हमें मिले।

गीता प्रेस के मज़दूरों की दूसरी माँग थी कि सभी कर्मचारियों को समान सवेतन 30 अवकाश दिया जाये, क्योंकि अभी असमान तरीक़े से साल में किसी को 21 तो किसी को 27 सवेतन अवकाश दिया जाता है जो अनुचित है। मज़दूरों की तीसरी माँग थी कि हाथ मशीनों में दबने, कटने और डस्ट आदि से बचने के लिए ज़रूरी उपकरण हमें मुहैया कराये जायें।

पेज 6 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

छत्तीसगढ़ में नसबन्दी कैम्प के दौरान 14 महिलाओं की मौत

(पेज 7 स आगे)

शिकार" समझकर नसबन्दी ऑपरेशन उन पर थोपे जा रहे हैं जोकि वैज्ञानिक दृष्टि से भी सही नहीं है। इस तरह यह मर्द-प्रधानता के ख़िलाफ़ लड़ाई का मुद्दा भी बन जाता है।

इसी नुक्ते का एक और पहलू भी है जो किसी महिला के बच्चा पैदा कर सकने के अधिकार के साथ जुड़ा हुआ है। बहुत से ऑपरेशनों में औरतों को पूरी जानकारी ही नहीं दी जाती और न ही सहमति ली जाती है। दूसरा, गर्भ रोकने के अस्थाई तरीक़े भी काफ़ी विकसित हो चुके हैं, परन्तु भारत में इन तरीक़ों को उतना प्रचारा नहीं जाता, प्रोत्साहित नहीं किया जाता, जितना नसबन्दी ऑपरेशनों को किया जाता है। भारत में 46 प्रतिशत जोड़े आज भी गर्भनिरोध की कोई विधि इस्तेमाल नहीं करते, या वह इस बारे में जानते ही नहीं। गर्भनिरोध के तरीक़े इस्तेमाल करने वाले बाक़ी जोड़ों में से आधे से बहुत ज़्यादा महिलाओं की नसबन्दी ऑपरेशन करवाते हैं। सरकारों की तरफ़ से तर्क दिया जाता है कि अस्थाई तरीक़े इस्तेमाल करना सिखाना कठिन है, लोग उनको ठीक-ठीक इस्तेमाल करना समझ नहीं पाते। यह बिल्कुल ग़लत तर्क है, कोई भी विधि इतनी कठिन नहीं है कि इस्तेमाल करना न सिखाया जा सके। दूसरा, अगर ऑपरेशन के लिए सहमति ली जा सकती है तो लोगों को अस्थाई तरीक़े अपनाने के लिए भी तैयार किया जा सकता है। परन्तु इसके लिए कोई राजनीतिक इच्छा है ही नहीं, क्योंकि सरकारें और नितिवानों के लिए आम लोग मनुष्य हैं ही नहीं, उनके लिए वे सिर्फ़ अमीरों के लिए काम करने वाली मशीनें हैं जो उतनी ही संख्या में होनी चाहिए, जितनी उनकी ज़रूरत है और साथ ही वे चाहते हैं कि ये मानवीय मशीनें खुराक, पानी और वातावरण में से अपना हिस्सा भी न माँगें। दूसरी तरफ़ अब यह माना जा चुका है कि सबसे अधिक असरदार गर्भ-निरोधक विधि आर्थिक और निष्कर्ष के तौर पर सांस्कृतिक विकास है, परन्तु ऐसा आज का परजीवी पूँजीवादी प्रबन्ध कर ही नहीं सकता। इसलिए इसके करते-धरते यह सच्चाई लोगों से छिपाने के लिए सारा दोष लोगों पर ही मढ़ देते हैं और अपने इस तथाकथित वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार समस्या को हल करने के नुस्खे सुझाते हैं, जिनका नुक़सान फिर ग़रीबों को ही उठाना पड़ता है, जैसे बिलासपुर ज़िले में 14 औरतों को अपनी जान की क़ीमत उठाकर भरना पड़ा है। मौजूदा सामाजिक ढाँचे में नसबन्दी ऑपरेशनों के कारण महिलाओं की मौतें होने की यह कोई पहली घटना नहीं थी, और यह आख़िरी घटना भी नहीं है।

– डा. अमृत

तेल की क़ीमतों में गिरावट का राज़

(पेज 16 स आगे)

की अर्थव्यवस्थाएँ इस गिरावट से बुरी तरह से प्रभावित हुई है। रूस के कुल निर्यात का 75 प्रतिशत हिस्सा तेल और गैस निर्यात का है। यही वजह है कि अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतों में गिरावट का नतीजा रूस की मुद्रा रूबल के मूल्य में भारी कमी के रूप में देखने को आया। जून से लेकर अब तक रूबल के मूल्य में 35 प्रतिशत गिरावट हुई है। रूस ने काले सागर से होते हुए यूरोप तक गैस पहुँचाने के लिए साउथ स्ट्रीम नामक जो गैस पाइपलाइन प्रस्तावित की थी उसे इस संकट के बाद अब रद्द करना पड़ गया है। जहाँ एक ओर राजनीतिक क्षेत्र में यूक्रेन के मसले पर रूसी साम्राज्यवाद ने अमेरिकी एवं पश्चिमी यूरोपीय साम्राज्यवादियों पर बढ़त बनायी थी, वही अब आर्थिक क्षेत्र में उसकी स्थिति डाँवाडोल दिखायी दे रही है। भविष्य में इसके ख़तरनाक परिणाम सामने आ सकते हैं क्योंकि यह अन्तरसाम्राज्यवादी होड़ को तीखा करेगी।

इसके अलावा तमाम अर्थशास्त्री इस बात की आशंका भी व्यक्त कर रहे हैं कि अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतों में इतनी भारी गिरावट (जिसके निकट भविष्य में जारी रहने की सम्भावना है) विश्व पूँजीवाद को एक नयी मन्दी की ओर भी झोंक सकती है। इन अर्थशास्त्रियों का मानना है कि अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में धातु और खाद्य पदार्थों की क़ीमतों में एक अरसे से गिरावट चल रही है और अब तेल में आयी गिरावट के बाद विश्व अर्थव्यवस्था में अपस्फीति (क़ीमतों में सामान्य कमी) का ख़तरा मँडरा रहा है जो एक नयी विश्वव्यापी मन्दी का सबब बन सकती है।

अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतों में आयी गिरावट से भारत जैसे देशों की लड़खड़ाती अर्थव्यवस्था को सँभलने में थोड़ी मदद मिल सकती है, क्योंकि भारत अपनी कुल तेल खपत का 70 फ़ीसदी से भी ज़्यादा आयात करता है। परन्तु जैसाकि हमने ऊपर देखा, अभी तक अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की क़ीमतों में आयी गिरावट का लाभ उपभोक्ताओं तक उस अनुपात में नहीं पहुँचा है जिस अनुपात में क़ीमतें अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में गिरी हैं। यदि भविष्य में पेट्रोल और डीज़ल की क़ीमतें और गिरती हैं तो इसका प्रभाव मुख्य तौर पर ऑटोमोबाइल उद्योग के पूँजीपतियों के बढ़ते मुनाफ़े के रूप में और इसका दुष्परिणाम पर्यावरण की तबाही के रूप में भी सामने आयेगा। मज़दूर वर्ग की ज़िन्दगी में तो इससे कोई बेहतरी नहीं होने वाली है।

-आनन्द सिंह

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; पीरागढ़ी (नवीन) 08750045975; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन - 09971158783
गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445
लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन - 09646150249 ● चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188
लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन - 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555
गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन - 09455920657
इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369 ● पटना : (विशाल) 09576203525
सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन - 09813192365
मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन - 09619039793

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,
बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।
मनीआर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/-

लुधियाना में 16 वर्षीय शहनाज़ के अपहरण, बलात्कार और क़त्ल का दर्दनाक घटनाक्रम

स्त्रियों, मज़दूरों, मेहनतकशों को अपनी रक्षा के लिए ख़ुद आगे आना होगा

लुधियाना के ढण्डारी खुर्द में 4 दिसम्बर को मज़दूर परिवार की एक लड़की को उसके घर में घुसकर बलात्कारी गुण्डा गिरोह ने मिट्टी का तेल डालकर जला दिया। उस समय वह घर में अकेली थी। चार दिन तक मौत से लड़ने के बाद 8 दिसम्बर को उसकी मौत हो गयी। उसके आखिरी शब्द थे – माँ, मुझे इंसाफ़ चाहिए।

यह दर्दनाक घटनाक्रम बयान कर पाना बहुत कठिन है और सिहरन पैदा करता है। इस 16 वर्ष की बारहवीं कक्षा की छात्रा को स्कूल जाते हुए 25 अक्टूबर को गुण्डा गिरोह ने अगवा किया था। परिवार पुलिस के पास रिपोर्ट लिखवाने गये तो उन्हें एक चौकी से दूसरी चौकी दौड़ाया गया। रिश्वत माँगी गई। दो दिन तक बलात्कार करने के बाद उसे छोड़ दिया गया। बहुत भागदौड़ करने के बाद रिपोर्ट दर्ज हुई। लेकिन बलात्कार की धारा नहीं लगायी गयी। चार लड़कों के खिलाफ़ रिपोर्ट दर्ज हुई। इनमें से तीन 15 दिन बाद ज़मानत पर रिहा हो गये और चौथा पकड़ा नहीं गया। । 30 अक्टूबर को स्थानीय लोगों ने पुलिस थाने पर प्रदर्शन करके पुलिस से माँग की थी कि चौथे बलात्कारी विक्की को भी पकड़ा जाए और इनपर बलात्कार का केस दर्ज हो। इसके अगले ही दिन 31 अक्टूबर को गुण्डा गिरोह के अन्य लड़कों ने घर में घुसकर लड़की को बाँधकर और उसके मुँह में कपड़ा डालकर मारा-पीटा और धमकाया कि केस वापिस ले। लेकिन वह और उसका परिवार इंसाफ़ के लिए डटे रहे। धमकियों के बावजूद उन्होंने लड़ाई जारी रखी। माँ-बाप पुलिस से सुरक्षा की माँग करते रहे, प्रधानमंत्री को भी चिट्ठी लिखी, विभिन्न पार्टियों के नेताओं से मदद माँगी लेकिन कहीं से मदद नहीं मिली। 4 दिसम्बर को माँ-बाप जब केस की तारीख पर गये थे तो गुण्डे फिर घर में घुसे और तेल डालकर उस लड़की को जला दिया।

4 दिसम्बर को पीड़िता को आग लगाने की घटना के बाद जब पुलिस की चारों तरफ़ से थू-थू हुई तो तीन-चार दिन में चार दोषियों (बिन्दर, अनवर, सहजाद, न्याज) को गिरफ्तार किया गया। अमरजीत, विक्की, बब्बू और बल्ली अभी भी फरार थे। इस गुण्डा गिरोह को नेताओं और पुलिस की कितनी सरपरस्ती हासिल है इसका अन्दाज़ा लगाना कठिन नहीं कि इन दिनों भी दोषी इलाके में खुलेआम घूम रहे थे। बलात्कारियों की मदद करने वाले पुलिस अधिकारियों पर कोई कार्रवाई नहीं हो रही थी। इलाज का सारा खर्च परिवार को उठाना पड़ रहा था। कारखाना मज़दूर यूनियन ने 8 दिसम्बर की शाम इलाके के मज़दूरों और अन्य स्थानीय लोगों की बड़ी मीटिंग करके संघर्ष कमेटी बनायी। सभी दोषियों को तुरन्त गिरफ्तार करने, केस फास्ट ट्रैक कोर्ट में चलाकर दोषियों को सज़ा देने, पीड़ित परिवार को कम से कम दस लाख का मुआवज़ा देने, दोषी पुलिस अधिकारियों को बर्खास्त करने और उन पर आपराधिक केस दर्ज करके उन्हें सख्त से सख्त सज़ा देने, गुण्डा गिरोहों-पुलिस-नेताओं के गठज़ोड़ पर लगाम कसने और आम लोगों खासकर स्त्रियों की सुरक्षा की गारण्टी करने की माँगों पर संघर्ष छेड़ने का ऐलान किया गया। अगले दिन पुलिस कमिशनर कार्यालय पर प्रदर्शन किया जाना था। उसी रात पीड़िता की मौत हो गई। संघर्ष समिति के आह्वान पर सुबह इलाके के हजारों मज़दूर काम पर न जाकर पीड़िता के घर पर इकट्ठा हुए और प्रदर्शन कर सरकार से उपरोक्त माँगें पूरी करने की माँग की। मगर इसके बजाय इलाके में भारी संख्या में पुलिस तैनात कर दी गयी। रंग-बिरंगे नेताओं, स्थानीय दलालों का झुण्ड भी आ पहुँचा। इन नेताओं ने परिवार को पुलिस पर भरोसा रखने के लिए कहा और मज़दूरों को धरना हटा देने लिए कहने के लिए दबाव बनाया। वे एक तरफ तो परिवार को पूरा साथ देने का वादा कर रहे थे लेकिन आपस में बात कर रहे थे कि क्या पता लड़की को परिवार ने खुद ही मारा हो। धरने की अगुवाई करने वाले यूनियन नेताओं को आतन्वादी, दंगई आदि कहकर बदनाम किया जा रहा था। ये दलाल मज़दूरों को काम पर जाने या कमरे पर जाकर आराम करने के लिए मना रहे थे। मज़दूरों के ज़ोरदार प्रदर्शन के कारण पुलिस-प्रशासन पर माँगें मानने के लिए काफी दबाव बना हुआ था लेकिन चुनावी पार्टियों के दलाल नेताओं के चलते कोई माँग नहीं मनवायी जा सकी। खानापूर्ती के लिए निचले पदों के दो पुलिस अधिकारियों का निलम्बन कर दिया गया। इसके सिवा बस खोखले जुबानी वायदे किये गये।

पंजाब सरकार खुलेआम दोषियों को बचाने का काम कर रही है। 12 दिसम्बर को पंजाब के उपमुख्यमंत्री सुखबीर सिंह बादल ने बयान दिया कि इस मामले की सच्चाई वो नहीं है जो पेश की जा रही है। उसके बयान का स्पष्ट अर्थ था कि लड़की ने हस्पताल में जज को जो बयान दिया वो झूठा है। वास्तव में, पंजाब सरकार अपने कुप्रशासन को छुपाना चाहती है। सरकार गुण्डा गिरोह व उसकी पीठ थपथपाने वाले नेताओं को बचाना चाहती है।

सुखबीर बादल के उपरोक्त बयान से लोगों का रोष अत्यधिक बढ़ गया। कारखाना मज़दूर यूनियन (अध्यक्ष लखविन्दर), टेक्सटाइल हौज़री कामगार यूनियन (अध्यक्ष राजविन्दर), नौजवान भारत सभा (नवकरण), पंजाब स्टूडेंटस यूनियन (ललकार) के नेतृत्व में 14 तारीख को तीन हज़ार से भी अधिक लोगों ने नेशनल हाईवे-1 (जी.टी. रोड) जाम कर दिया। माँग की गयी कि सुखबीर बादल झूठी बयानबाजी के लिए माफी माँगें, बलातकारियों- कातिलों को बचाने की कोशिशें बन्द की जायें, और पीड़ित परिवार को इंसाफ दिया जाए। दो घण्टे से भी अधिक समय तक हाईवे पूरी तरह जाम रहा। पुलिस-प्रशासनिक उच्च अधिकारियों द्वारा इंसाफ की गारण्टी करने के भरोसे के बाद ही धरना हटाया गया।

अधिकतर परिवार छेड़छाड़, बलात्कार, अगवा आदि की घटनाओं को बदनामी के डर से दबा जाते हैं। लेकिन पीड़ित परिवार ने ऐसा नहीं किया। तमाम धमकियों, अत्याचारों के बावजूद भी लड़ाई जारी रखी है। पीड़ित लड़की और उसके परिवार का साहस सभी स्त्रियों, ग़रीबों और आम लोगों के लिए मिसाल है।

इंसाफ़ की इस लड़ाई में मज़दूरों और अन्य आम लोगों धर्म, जाति, क्षेत्र से ऊपर उठकर जो एकजुटता दिखाई है वह अपने आप में एक बड़ी बात है। कई धार्मिक कट्टरपंथी, चुनावी दलाल नेता, पुलिस-प्रशासन के पिट्ठू छुट्टभैया नेता इस मामले को एक ''कौम'' का मसला बनाने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन जनता ने इनकी एक न चलने दी। 14 दिसम्बर को रोड जाम करके किये गये प्रदर्शन के दौरान पंजाबी भाषी लोगों का भी काफी समर्थन हासिल हुआ। स्त्रियों सहित आम जनता को अत्याचारों का शिकार बना रहे गुण्डा गिरोहों और जनता को भेड़-बकरी समझने वाले पुलिस-प्रशासन, वोट-बटोरू नेताओं और सरकार के गठबन्धन को मज़दूरों-मेहनतकशों की फौलादी एकजुटता ही धूल चटा सकती है।

सरकार और पुलिस-प्रशासन के लिए जनता के इस संघर्ष को एकदम अनदेखा कर देना सम्भव नहीं रह गया है। इस केस को फास्ट ट्रेक कोर्ट में भेजने का ऐलान पुलिस कर चुकी है। प्रदर्शन के बाद दो और दोषी पकड़े जा चुके हैं। प्रशासन परिवार को अधिक से अधिक मुआवज़ा देने की कागज़ी कार्रवाई शुरू कर चुका है।

यह मामला सिर्फ एक परिवार का नहीं है बल्कि सभी उत्पीड़ित स्त्रियों, आम जनता, मज़दूरों, मेहनतकशों, नौजवानों, छात्रों, इंसाफपसंद लोगों का मसला है। स्त्रियों खासकर ग़रीब स्त्रियों को पूरे समाज में जुल्मों का शिकार बनाया जा रहा है। स्त्रियों के साथ छेड़छाड़, अपहरण, बलात्कार, तेजाब फेंकने, मारपीट, आदि की घिनौनी घटनाएँ बढ़ती ही जा रही हैं। दिनदिहाड़े लड़कियों को अगवा किया जा रहा है, बलात्कार का शिकार बनाया जा रहा है। स्त्रियों ही नहीं बल्कि सभी ग़रीबों पर अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं। यह सरकारी तंत्र इतना जनविरोधी हो चुका है कि इससे किसी सुरक्षा की उम्मीद बाकी नहीं रह गई है। इससे जिस हद तक भी हमें कुछ प्राप्त हो सकता है वह भी व्यापक एकजुट संघर्ष के जरिए ही हो सकता है। जनता को अपनी रक्षा खुद करनी होगी। ढण्डारी बलात्कार व कत्ल काण्ड का हमारे लिए यह एक अहम सबक है। गुण्डा गिरोहों का सामना करने के लिए मोहल्लों, बस्तियों, गाँवों में जुझारू दस्ते-कमेटियाँ बनाने होंगे। पूँजीपतियों, गुण्डा गरोहों, पुलिस प्रशासन, चुनावी नेताओं और सरकार की लूट, दमन, अन्याय के खिलाफ जुझारू संगठन खड़े करने होंगे।

यह दर्दनाक घटनाक्रम समाज में स्त्रियों और गरीबों की स्थिति को उघाड़ कर पेश करता है। पूँजीवादी नेताओं और पुलिस-प्रशासन की सरपरस्ती के नीचे पलने वाले गुण्डा गिरोह कितना बेखौफ़ होकर स्त्रियों और गरीबों को निशाना बना रहे हैं यह घटनाक्रम इसका एक बड़ उदाहरण है। यह पूँजीवादी व्यवस्था, इसकी पुलिस-प्रशासन, इसके सेवक नेता, सरकार हमें न्याय देंगे यह उम्मीद पालने की कोई तुक नहीं बनती। मज़दूर-मेहनतकश जनता को इंसाफ़ अपनी एकजुट ताकत पर भरोसा रखकर ही मिल सकता है।

– लखविन्दर

मज़दूर विरोधी "श्रम सुधारों" के ख़िलाफ़ रोषपूर्ण प्रदर्शन

केन्द्र सरकार को श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधन रद्द करने के लिए माँगपत्र भेजा

केन्द्र की मोदी सरकार द्वारा नवउदारवादी नीतियों के तहत श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधनों के ख़िलाफ़ बीती 20 नवम्बर को टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन और कारख़ाना मज़दूर यूनियन की ओर से डी.सी. कार्यालय पर ज़ोरदार प्रदर्शन किया गया। मज़दूर संगठनों ने तथाकथित श्रम सुधारों की तीखी आलोचना करते हुए भारत सरकार से घोर मज़दूर विरोधी नीति रद्द करने की माँग की। डी. सी. लुधियाना के ज़रिये भारत सरकार को इस सम्बन्धी माँगपत्र भेजा गया है। संगठनों के वक्ताओं ने प्रदर्शन को सम्बोधित करते हुए कहा कि पहले ही पूँजीपति मज़दूरों की मेहनत की भयंकर लूट कर रहे हैं, जिसके चलते मज़दूर ग़रीबी-बदहाली की ज़िन्दगी जीने पर मज़बूर हैं। "श्रम सुधारों" के कारण मज़दूरों की लूट ओर तीखी होगी। इसके ख़िलाफ़ मज़दूरों में भारी रोष है। अगर यह नीति रद्द नहीं होती तो हुक्मरानों को तीखे मज़दूर आन्दोलन का सामना करना होगा।

प्रदर्शन की तैयारी के लिए दोनों यूनियनों की ओर से तीन सप्ताह तक लुधियाना के ओद्यौगिक मज़दूरों में सघन प्रचार अभियान चलाया गया। अधिक से अधिक मज़दूरों को श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधनों के बारे में बताने और इसके ख़िलाफ़ संगठित करने का लक्ष्य रखा गया। हज़ारों की संख्या में पर्चा प्रकाशित करके बड़े स्तर पर मज़दूरों में बाँटा गया। नुक्कड़ व बेड़ा मीटिंगें की गयीं, कमरे-कमरे जाकर मज़दूरों को संशोधनों के बारे में बताया गया और मोदी सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का आह्वान किया गया। प्रचार के दौरान मज़दूरों में मोदी सरकार के श्रम सुधारों के ख़िलाफ़ रोष साफ़ दिखायी दिया।

20 नवम्बर को बड़ी संख्या में मज़दूर पहले श्रम विभाग कार्यालय पर जुटे। हाथों में सरकार विरोधी नारों वाली तख्तियाँ पकड़े, लाल झण्डे लहराते हुए, मज़दूर विरोधी श्रम सुधार रद्द करने और मज़दूरों के हित में श्रम सुधार लागू करने की माँग करते हुए मज़दूरों के बड़े काफ़िले ने श्रम विभाग कार्यालय से डी.सी. कार्यालय तक पैदल मार्च किया। इस दौरान शहर के लोगों में पर्चा भी बाँटा गया।

डी.सी. कार्यालय पहुँचकर मज़दूरों ने डी.सी. को माँगपत्र दिया, जिसमें श्रम क़ानूनों में सम्भावित संशोधन रद्द करने की माँग की गयी। रैली को टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के अध्यक्ष राजविन्दर, कारख़ाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर, नौजवान भारत सभा के कुलविन्दर, मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्ज यूनियन के अध्यक्ष हरजिन्दर सिंह ने सम्बोधित किया।

फ़ैक्टरियों में सुरक्षा के इन्तज़ाम की माँग को लेकर मज़दूरों ने किया प्रदर्शन

दस दिसम्बर को वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूरों ने 'दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन' के नेतृत्व में वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र के ठण्डा रोला और पावर प्रेस सहित सभी फ़ैक्टरियों में सुरक्षा के पुख़्ता इन्तज़ाम की माँग उठाते हुए श्रम विभाग नीमड़ी कॉलोनी का घेराव किया। बैनर, पोस्टर और नारों के साथ सड़क पर मार्च करता हुआ यह दस्ता बरबस ही लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच रहा था।

पिछले 27 नवम्बर को ठण्डा रोला के एक मज़दूर मंगरू की मौत काम करते समय गले में स्टील की पत्ती लग जाने से हो गयी। मालिक ने मामले को रफ़ा-दफ़ा करने के लिए पुलिस को रिश्वत देकर इसे एक हादसा करार देने की कोशिश की। ज्ञात हो कि वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में यह पहली ऐसी घटना नहीं है। आये दिन फ़ैक्टरियों में दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। यहाँ ऐसे ज़्यादातर मज़दूर हैं जो अंग-भंग का शिकार हैं। काम करते समय मशीन में लगकर अँगुलियाँ कट जाना, शरीर में स्टील की पत्ती घुस जाना आम बात हो गयी है। यहाँ की तमाम फ़ैक्टरियों में न ही कोई श्रम क़ानून लागू होता है और न ही सुरक्षा के पुख़्ता इन्तज़ाम हैं। श्रम विभाग कान में तेल डालकर चैन की नींद सोता रहता है और मालिक दिनोरात मज़दूरों को निचोड़कर अपनी तिजोरियाँ भरते रहते हैं। इन हालात के मद्देनज़र 'दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन' के नेतृत्व में वज़ीरपुर के मज़दूरों ने एकजुट होकर अपने साथी मंगरू को इन्साफ़ दिलवाने और पूरे वज़ीरपुर औद्योगिक इलाक़े में सुरक्षा के पुख़्ता इन्तज़ाम की माँग को लेकर वज़ीरपुर से नीमड़ी कॉलोनी स्थित श्रम विभाग तक पैदल मार्च किया और वहाँ पहुँचकर श्रम आयुक्त को अपना ज्ञापन सौंपा। श्रम विभाग ने इस मामले में समुचित कार्रवाई का आश्वासन दिया है।

'दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन' की क़ानूनी सलाहकार शिवानी ने बात रखते हुए कहा कि सुरक्षा के इन्तज़ाम की माँग वेतन-भत्ते की लड़ाई से बड़ी है। इसका मतलब है कि हम अपना जीवन जीने का अधिकार माँग रहे हैं, इसका मतलब है कि हमें इन्सानों की तरह ज़िन्दगी जीने का पूरा हक़ है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में मालिक हमें मशीन का एक पुर्जा समझता है, जिसे घिस जाने पर निकालकर फेंक दिया जाता है, लेकिन हम बता देना चाहते हैं कि अब चुपचाप ये सब नहीं सहेंगे।

'दिल्ली इस्पात मज़दूर यूनियन' के सनी ने अपनी बात में कहा कि इस तरह कि घटनाएँ हमारे सामने रोज़ घट रही हैं और मालिकों को हमारी चुप्पी से शह मिल रहा है। आज ज़रूरत इस बात की है कि एकजुट और संगठित हुआ जाये, तभी ऐसी घटनाओं को रोका जा सकता है। अपनी क्रान्तिकारी यूनियन के बैनर तले एकजुट होकर ही अपनी हर लड़ाई को मुकम्मल तौर पर जीता जा सकता है। यूनियन के सदस्य बाबूराम ने अपनी बात में कहा कि हमारी एकता और हमारी यूनियन हमारे वे अचूक हथियार हैं, जिनके दम पर मालिकों की जमात को धूल चटायी जा सकती है।

5 दिसम्बर को जन्तर-मन्तर पर 11 केन्द्रीय ट्रेड यूनियन के "प्रतिरोध दिवस" की एक और रस्म अदायगी! क्या भगवा और नक़ली लाल का गठजोड़ मज़दूरों आन्दोलन को आगे ले जा सकता है?

5 दिसम्बर को संसद मार्ग जन्तर-मन्तर पर मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी बदलाव के ख़िलाफ़ देश की 11 ट्रेड यूनियनों के संयुक्त मोर्चा ने प्रतिरोध दिवस बनाया गया। गुरूदास गुप्ता, हरभजन सिद्धू जैसे बड़े-बड़े ट्रेड यूनियन नेताओं ने फिर रटे-रटाये भाषणों की छड़ी लगायी। सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने मोदी सरकारों द्वारा श्रम-क़ानूनों में बदलाव पर विरोध दर्ज कराया। इस विरोध-प्रदर्शन में लगभग 3000 मज़दूरों ने शिरक्त की। असल में दिल्ली और आस-पास से आये ज़्यादातर मज़दूरों के लिए प्रदर्शन किसी पिकनिक से कम नहीं था। क्योंकि वे भी जानते हैं कि सुंयक्त केन्द्रीय ट्रेड यूनियन के प्रदर्शन की ये नौटंकी कोई नयी नहीं। हर साल-दो साल में ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें विरोध-प्रदर्शन की रस्म अदायगी करके मज़दूरों के बीच भ्रम बनाने की कोशिश करती हैं कि हमें ही मज़दूरों के सच्चे प्रतिनिधि (असल में धन्धेबाज़) हैं। लेकिन सबसे मज़ेदार बात यह है कि श्रम क़ानूनों में हो रहे बदलाव पर संसद में बैठी इनकी पार्टियाँ मौन हैं। वहीं संसदीय वामपन्थी पार्टियों की यूनियनों जैसे सीटू, एटक, एक्टू से लेकर अन्य चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियन इण्टक, बीएमएस लम्बे समय बाद चुप्पी तोड़कर जुबानी जमाख़र्च करते हुए शिकायत कर रही है कि संशोधनों के प्रावधानों के बारे में उनसे कोई सलाह नहीं ली गयी यानी कि इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की मुख्य शिकायत यह नहीं थी कि पहले से ढीले श्रम क़ानूनों को और ढीला क्यों बनाया जा रहा है, बल्कि यह थी कि यह काम पहले उनसे राय-मशविरा करके क्यों नहीं किया गया।

वहीं दूसरी ओर केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ की इस बारात में धुरीविहीन "इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र" भी अपने 20-25 मज़दूरों के साथ शामिल बाजे की तरह पहुँच गये। असल में इंमके की अवसरवादी ट्रेड यूनियनवादी समझदारी यही है कि किसी तरह केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ के पूँछ बनकर लटक रहे। असल न तो इंमके को केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ ने मंच पर कोई जगह दी और न ही इनके किसी वक्ता ने कोई बात रखी। बस ये जन्तर-मन्तर पर चल रही राष्ट्रीय दलित महासभा और केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ के प्रदर्शन के बीच ख़ाली जगह पर अपने बैण्ड-बाजा लेकर बैठे रहे। जिसको न तो कोई सुन रहा था और न ही कोई देख रहा था। साफ़ है कि मज़दूरों के बीच लोकरंजक तरीक़े से ट्रेड यूनियन के काम करने की विजातीय प्रवृति इंमके को अवसरवादी ट्रेड यूनियनवाद के विचलन तक ले जाती है।

असल में ये चुनावबाज़ पार्टियों की केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ कथनी में तो मज़दूरों की रहनुमाई का दावा करते हैं, लेकिन करनी में इनका काम मालिकों, प्रबन्धन और सरकार की ओर से दलाली करना और मज़दूर आन्दोलन को ऐसे समझौतों तक सीमित रखना है जिनमें हमेशा प्रबन्धन का पक्ष मज़दूरों पर हावी रहता है। सोचने की बात है कि सीपीआई और सीपीएम जैसे संसदीय वामपन्थियों समेत सभी चुनावी पार्टियाँ संसद और विधानसभाओं में हमेशा मज़दूर-विरोधी नीतियाँ बनाती हैं तो फिर इनसे जुड़ी ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के हक़ों के लिए कैसे लड़ सकती हैं? पश्चिम बंगाल में टाटा का कारख़ाना लगाने के लिए ग़रीब मेहनतकशों का क़त्लेआम हुआ तो सीपीआई व सीपीएम से जुड़ी ट्रेड यूनियनों ने इसके ख़िलाफ़ कोई आवाज़ क्यों नहीं उठायी? जब कांग्रेस और भाजपा की सरकारें मज़दूरों के हक़ों को छीनती हैं तो भारतीय मज़दूर संघ, इण्टक आदि जैसी यूनियनें चुप्पी क्यों साधे रहती हैं? ज़्यादा से ज़्यादा चुनावी पार्टियों से जुड़ी ये ट्रेड यूनियनें इस तरह रस्मी प्रदर्शन या विरोध की नौटंकी करती हैं। ऐसे में, इन चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियनों से हम मज़दूर क्या कोई उम्मीद रख सकते हैं? पिछले कई वर्षों से लगातार इन ट्रेड यूनियनों की ग़द्दारी को देखने के बावजूद क्या हम इनके भरोसे रहने को तैयार हैं? बार-बार धोखा खाने के बावजूद क्या हम इन्हीं पर निर्भर रहेंगे? हर साल ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें "आम हड़ताल", "भारत बन्द" या "प्रतिरोध दिवस" के कर्मकाण्ड का आयोजन करती हैं, जिसमें बैंक, बीमा से लेकर रेल के सरकारी कर्मचारियों की वेतन-भत्ते की माँगें सबसे ऊपर होती हैं और केवल भीड़ जुटाने के लिए ये असंगठित मज़दूरों की माँगों को रख लेते हैं। वास्तव में इन दिखावटी हड़तालों से ये मज़दूरों के गुस्से की आग पर पानी के छींटे मारने और उन्हें चन्द टुकड़े दिलवाने से ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते हैं। ज़्यादातर ऐसी रैलियों में शामिल हुए मज़दूर भी जानते हैं कि एक-दो दिन के दिखावटी विरोध-प्रदर्शन या हड़ताल से मालिकों को खुजली भी नहीं होने वाली। वैसे भी देश की 12 केन्द्रीय यूनियनों के पास पूरे देश के 46 करोड़ मज़दूरों में से सिर्फ़ 5 करोड़ मज़दूरों की सदस्यता है। यानी, पूरे देश की 90 फ़ीसदी मज़दूर आबादी अभी भी इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के दायरे से बाहर है। साफ़तौर पर केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ दिखाने के लिए एक साथ है, लेकिन वास्तव में फ़ैक्टरी-कारख़ानों के स्तर पर ये मज़दूरों के संघर्ष में अलग-अलग दुकानदारी चलते हैं। तभी सीटू, एटक, इण्टक, एक्टू, बीएमएस से लेकर एचएमएस जैसी यूनियनों के पास न तो मज़दूर आन्दोलन को आगे ले जाने का कोई रास्ता है और न ही इनकी ऐसी कोई मंशा है। वास्तव में, ट्रेड यूनियन आन्दोलन में इनकी भूमिका सिर्फ़ दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई लड़ते-लड़ते मज़दूरों की जुझारू चेतना की धार को कुन्द करना और इसी पूँजीवादी व्यवस्था में जीते रहने की शिक्षा देना और साथ ही पूँजीपति वर्ग के दलाल की भूमिका निभाना है।

इसलिए हमें आज सही क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन को आगे बढ़ने के लिए पहले क़दम से मज़दूर वर्ग की ग़द्दार इन केन्दीय ट्रेड यूनियनों के चरित्र को मज़दूरों के सामने पर्दाफाश करना होगा। साथ ही आज के समय में नये क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए मज़दूरों की पूरे सेक्टर (जैसे ऑटो सेक्टर, टेक्सटाइल सेक्टर) की यूनियन और इलाक़ाई यूनियन का निर्माण करना होगा। क्योंकि मज़दूर से छीने जा रहे श्रम-क़ानूनों की रक्षा भी जुझारू मज़दूर आन्दोलन ही कर सकता है।

– अजय

अस्ति का मज़दूर आन्दोलन ऑटो सेक्टर मज़दूरों के संघर्ष की एक और कड़ी!

पूँजीवाद में हर दिन पूँजी और श्रम के बीच संघर्ष का होता है। आयेदिन कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी कारख़ाने में यह संघर्ष उभरकर सामने आता है। इस बार मामला है। अस्ति इलेक्ट्रॉनिक्स इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, प्लॉट नं. 399, सेक्टर 8, मानेसर। यह जापानी कम्पनी अस्ति कॉरपोरेशन की सब्सीडरी कम्पनी है। दुनियाभर में शोषण-उत्पीड़न के नये-नये पैंतरों के लिए जापानी कम्पनियाँ मशहूर हैं। इस बार इन्होंने तीन-चार सालों से ठेके पर काम कर रहे 310 मज़दूरों को बिना किसी नोटिस के काम से निकाल दिया, जिनमें 250 महिला मज़दूर हैं। मज़दूरों को 1 नवम्बर की शाम को बताया गया कि उन्हें काम से निकाला जा रहा है। मज़दूर इस बात का प्रतिरोध करते हुए 3 नवम्बर से फ़ैक्टरी गेट पर स्थाई धरने का निर्णय लिया। कम्पनी ने 150 मीटर स्टेआर्डर का बहाना करके मज़दूरों को गेट से हटा दिया। साथ ही महिला मज़दूरों के साथ बदसलूकी की। लेकिन मज़दूर वहाँ से बस थोडी ही दूरी पर तम्बू गाड़कर चौबीसों घण्टे डटे हुए हैं। निकाले गये मज़दूरों में अधिकतर 3-4 सालों से मुख्य उत्पादन लाइन पर स्थायी मज़दूरों से अभिन्न ऑपरेटर का काम कर रहे थे। ठेका पर काम करने वाले मज़दूरों को ठेकेदार के मातहत काम करना होता है, लेकिन औद्योगिक बेल्ट के कई कारख़ानों की तरह यहाँ भी ठेका मज़दूर ठेकेदार के नीचे नहीं, बल्कि प्रबन्धन के निर्देश पर काम करते हैं। इस हालात में ठेके पर काम कराना पूरी तरह ग़ैर-क़ानूनी है। वहीं दूसरी तरफ़ प्रबन्धन ने स्थायी मज़दूरों

को डरा-धमकाकर ठेका मज़दूरों के संघर्ष से दूर कर दिया है। ग़ौरतलब है कि स्थायी मज़दूरों की एच.एम.एस. से जुड़ी एक यूनियन है। जिसने ठेका मज़दूरों के इस संघर्ष से कुछ खानापूर्ति मदद करके अपना पल्ला झाड़ लिया। लेकिन जब यूनियन बनाने का संघर्ष चल रहा था, तब ठेका मज़दूरों ने स्थायी मज़दूरों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर इसमें हिस्सा लिया था, साथ ही लाखों रुपये का चन्दा इकट्ठा कर सहयोग किया था। ठेका मज़दूरों ने श्रम कार्यालय में पत्र डाल अपनी शिकायत दर्ज की, जिसके पश्चात श्रम विभाग आन्दोलनरत मज़दूर और प्रबन्धन अधिकारी के बीच त्रिपक्षीय वार्ता शुरू हुई, जिसमें प्रबन्धन प्रतिनिधि अड़ियल रवैया पर डटा हुआ था। वैसे भी श्रम की लूट की प्रक्रिया में सरकार-प्रशासन और पूँजीपतियों का गठजोड़ सर्वविदित है। मज़दूर अपने संघर्ष के दौरान बीच-बीच में गेट मीटिंग भी करते रहते हैं, जहाँ पुलिस और मालिकान का गठजोड़ नंगे रूप में सामने आता है जोकि मज़दूरों को अपना संघर्ष करने से रोकता है। मज़दूरों के इस संघर्ष में तकरीबन 250 महिलाएँ हैं, जिनमें से नौ गर्भवती हैं। सभी ठेका मज़दूर पूरी ऊर्जा के साथ इस संघर्ष में डटे हुए हैं। मज़दूरों ने संघर्ष को चलाने के लिए अस्ति ठेका मज़दूर संघर्ष समिति का गठन किया। जो संघर्ष के आगे की कार्ययोजना और निर्णय ले सके। श्रम-विभाग में चार दौर वार्ता के बाद प्रबन्धन अपने अड़ियल रुख़ पर क़ायम है। साफ़ है कि आज पूरे गुड़गाँव में ज़्यादातर कारख़ानों में 6 महीने ठेके का बोलबाला है। इसलिए कम्पनी 3-4 साल पुराने मज़दूरों को बाहर धकेलकर नये ठेका मज़दूरों को काम पर रखना चाहती है, ताकि इन मज़दूरों को स्थायी करने की बाधता से बच सके।

मज़दूरों ने अपने संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए सात मज़दूर 25 नवम्बर से आमरण अनशन पर बैठे हैं। ये सात मज़दूर संजू, रासिका, रिंकू, हनी, कृष्णा, स्वगतिका, भावना हैं। ख़बर लिखे जाने तक सातों मज़दूर 14 दिनों तक आमरण अनशन जारी किये हुए है। अनशनकारी साथियों में महिला मज़दूर संजू और रासिका अस्पताल में भर्ती होने के बावजूद अपना संघर्ष जारी रखे हुए है। वहीं दूसरी तरफ़ गुड़गाँव प्रशासन और श्रम विभाग सब कुछ देखकर भी अन्धा-गूंगा- बहरा बना हुआ है। अस्ति मज़दूरों के संघर्ष में मारुति सुजुकी वर्कर्स यूनियन, मुंजाल किरुऊ, ऑटोफ़िट, सत्यम ऑटो, बैक्टसर और ऑटो मज़दूर संघर्ष समिति समेत अलग-अलग संगठन उनकी हौसला- अफ़ज़ाई और मदद के लिए उनके बीच पहुँचते रहते हैं।

आज अस्ति में मज़दूरों पर अन्याय, शोषण, अत्याचार की यह अकेली घटना नहीं है। ऑटो सेक्टर की यह पूरी बेल्ट में इस तरह मज़दूरों की हड्डियाँ का चूरा बनाकर कम्पनियाँ मुनाफ़ा कूट रही हैं। और इसके विरुद्ध मज़दूरों की आवाज़ अलग-अलग समय पर अलग-अलग फ़ैक्टरी से उठती ही रही हैं। लेकिन फ़ैक्टरी-कारख़ानें की चौहद्दी में क़ैद होकर ये आन्दोलन टूट और बिखराव का शिकार हो जाता है। इसलिए अस्ति के मज़दूरों को अपनी फ़ौरी लड़ाई लड़ते हुए भी अपनी दूरगामी लड़ाई के लिए भी तैयार रहना होगा। क्योंकि आज पूरे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल में ठेका, कैजुअल, ट्रेनी मज़दूर बेहद शोषण और अमानवीय परिस्थितियों में काम करने के लिए बेबस है। जिन कम्पनियों में यूनियन बनी है, उसका फ़ायदा भी सिर्फ़ स्थायी मज़दूरों को मिलता है। जबकि हम सभी जानते हैं कि मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में बदलाव के बाद स्थायी कर्मचारियों के भी हक़-अधिकारों पर हमला होना तय है। इसलिए स्थायी, कैजुअल और ठेका मज़दूरों को अपनी ठोस एकता कायम करनी होगी, साथ ही पूरे ऑटो सेक्टर के आधार पर गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के मज़दूरों की "ऑटो मज़दूर यूनियन" का निर्माण करना होगा। ज़ाहिरा तौर ऐसी ऑटो सेक्टर मज़दूर यूनियन मज़दूर आन्दोलन से ग़द्दारी कर चुकी केन्द्रीय ट्रेड से स्वतन्त्र होनी चाहिए।

– अजय

अस्ति के मज़दूरों का संघर्ष: सम्भावनाएँ और चुनौतियाँ

जापानी बहुराष्ट्रीय कम्पनी अस्ती कारपोरेशन की मानेसर (गुड़गाँव) स्थित सब्सिडियरी कम्पनी 'अस्ति इलेक्ट्रॉनिक्स इंडिया प्राइवेट लि. के बर्खास्त किये गये ठेका मज़दूर पिछले डेढ़ महीने से संघर्ष कर रहे हैं। कम्पनी ने 310 मज़दूरों को काम से निकाल दिया है जिनमें से 250 स्त्री मज़दूर हैं। उल्लेखनीय है कि ये मज़दूर 3-4 वर्षों से ज़्यादा से काम कर रहे थे और उन्हें बिना कोई कारण बताय निकाल दिया। श्रम विभाग की कम्पनी प्रशासन से साँठ-गाँठ है और हरियाणा सरकार का रवैया भी इससे अलग नहीं है। यहाँ तक कि केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन हिन्दुस्तान मज़दूर संघ (एचएमएस) ने अस्ति के स्थायी मज़दूरों को संघर्षरत ठेका मज़दूरों को अपना खुला और प्रभावी समर्थन देने से रोक दिया है। एटक, सीटू जैसी दूसरी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशनों का भी यही रवैया है। उन्होंने भी संघर्ष को सार्थक समर्थन नहीं दिया है और महज़ ज़ुबानी जमाखर्च तक सीमित हैं।

नतीजतन, अस्ति के ठेका मज़दूरों का संघर्ष अपने बूते पर चल रहा है। आन्दोलनरत स्त्री मज़दूरों में से 9 गर्भवती हैं। मज़दूरों की भूख हड़ताल एक सप्ताह से ज़्यादा समय से जारी है। इनमें से दो मज़दूरों की हालत बिगड़ने पर उन्हें अस्पताल के आईसीयू में भरती कराना पड़ा। इसके बाद फैक्टरी के स्थायी मज़दूरों ने ठेका मज़दूरों के साथ एकजुटता दिखाते हुए लंच लेने से इंकार कर दिया। लेकिन महज़ यह प्रतीकात्मक समर्थन काफी नहीं है। चाहने के बावजूद परमानेंट मज़दूर एचएमएस की नीतियों के विरोध में नहीं गये, जिसके साथ उनकी यूनियन जुड़ी हुई है। एचएमएस लगातार इस कोशिश में है कि आन्दोलन को कम्पनी के मैनेजमेंट और श्रम विभाग के लिए सुरक्षित दायरे के भीतर ही बनाये रखा जाये। संघर्षरत मज़दूरों की हालत बिगड़ रही है और उन्हें आन्दोलन जारी रखने के लिए राजनीतिक और वित्तीय मदद की ज़रूरत है। इस बीच आस्ट्रेलिया एशिया वर्कर्स लिंक और ऑटो मज़दूर संघर्ष समिति की पहल पर कई देशों की यूनियनों और मज़दूर संगठनों से एकजुटता सन्देश भी आने लगे हैं। ब्राज़ील के एक संगठन टी.आई.ई. ने अपने देश में इस संघर्ष के बारे में एक रिपोर्ट भी प्रकाशित की है।

लेकिन अस्ति के मज़दूर संघर्ष के सामने कठिन चुनौतियाँ मौजूद हैं। इनमें सबसे अहम चुनौती है संघर्ष की सही रणनीति तय करना। किसी भी आन्दोलन को आगे बढ़ने के लिए दो पैरों पर चलना होता है। पहला, सड़कों पर चलने वाला संघर्ष, और दूसरा, क़ानूनी संघर्ष। अस्ति के ठेका मज़दूरों ने इस लड़ाई में शानदार साहस दिखाया है और वे दृढ़ता के साथ मोर्चे पर जमे हुए हैं। लेकिन, चुनौतियाँ बहुत बड़ी हैं और उनका सामना करने के लिए एक स्पष्ट और विस्तृत रणनीति ज़रूरी है। यह स्पष्ट है कि मज़दूरों को साथ लेने के लिए ज़्यादा कारगर क़दम उठाने होंगे। खासकर दूसरे कारख़ानों के ठेका और कैजुअल मज़दूरों को। चुनावी पार्टियों से जुड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशनें इस रास्ते में एक बड़ा रोड़ा बनी हुई हैं। पिछले संघर्षों का अनुभव बताता है कि उन्होंने कभी आन्दोलन को आगे बढ़ाने में भूमिका नहीं निभायी। वे हमेशा आन्दोलन को नपुंसक औपचारिक क़ानूनी कार्रवाइयों के दायरे में बाँधे रखती रही हैं। यहाँ भी, एचएमएस अब तक मज़दूरों को हतोत्साहित करने का ही काम करता रहा है और आगे इस भूमिका में बदलाव आयेगा, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं दिखता। फिर भी, इन चुनौतियों के बावजूद, अगर ठेका मज़दूर केन्द्रीय यूनियनों के नौकरशाहों को दरकिनार करके सीधे एक-दूसरे से मिलें तो तमाम कारख़ानों की एक यूनियन बनायी जा सकती है। बेशक, यह काम आसान नहीं है, लेकिन यही एकमात्र रास्ता है। इलाके के सभी कारख़ानों के मज़दूरों के बीच, ख़ासकर कैजुअल और ठेका मज़दूरों के बीच, एकजुटता के कारगर रिश्ते कायम करना आज अत्यावश्यक है।

आन्दोलन के सामले दूसरी चुनौती एक स्पष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण की है। आज किसी भी आन्दोलन के लिए ज़रूरी है कि वह मज़दूर आन्दोलन में मौजूद विजातीय प्रवृत्तियों के बारे में सचेत रहे, ख़ासकर अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी संगठनों और एनजीओ-मार्का संगठनों से जो 'सहायता' करने का दावा करते हैं। साथ ही, उन्हें प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों से जुड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से सावधान रहना होगा। अस्ति के मज़दूरों के आन्दोलन के सामने अपने सच्चे राजनीतिक मित्रों की पहचान करने की भी चुनौती है। संघर्षरत मज़दूर अपने अनुभवों से तेज़ी से इसे सीख भी रहे हैं। इस लड़ाई के दौरान मज़दूरों ने काफी कुछ सीखा है और हम उम्मीद कर सकते हैं कि राजनीतिक दोस्त-दुश्मन की पहचान करने का काम भी मज़दूर सफलतापूर्वक पूरा करेंगे। सवाल है कि कब तक? हमारे पास कितना समय है?

जहाँ तक क़ानूनी संघर्ष की बात है, यह साफ है कि इलाक़े के उप श्रमायुक्त कार्यालय विवाद को हल करने के लिए अपनी ओर से कोई सक्रिय क़दम नहीं उठाने जा रहा। बल्कि वह मज़दूरों से लम्बा इन्तज़ार कराने की चाल चल रहा है। मज़दूर आन्दोलनों को तोड़ने में अतीत में यह चाल काफी कामयाब रही है क्योंकि क़ानूनी समाधान में बहुत देर होने पर मज़दूरों की धीरज चुकने लगता है। तो फिर रास्ता क्या है? मज़दूरों को सीधे हाई कोर्ट जाना चाहिए और डीएलसी कार्यालय को विवाद जल्द से जल्द सुलझाने का निर्देश दिलवाने का फैसला हासिल करना चाहिए क्योंकि यहाँ सैकड़ों मज़दूरों, ख़ासकर स्त्री मज़दूरों के अस्तित्व का सवाल है। हमें मानना होगा कि अब तक आन्दोलन की क़ानूनी रणनीति पूरी तरह सही नहीं रही है। अगर मज़दूर नवम्बर के मध्य में ही हाई कोर्ट में चले गये होते, तो डीएलसी कार्यालय को तारीख पर तारीख देते रहने के बजाय कोई कारगर कार्रवाई करनी पड़ती। लेकिन गलत क़ानूनी सलाह के कारण ऐसा नहीं हो सका। इस कारण से भी, अस्ति के मज़दूर आन्दोलन के लिए अपने सच्चे दोस्तों औक्र विजातीय प्रवृत्तियों की पहचान करना ज़रूरी है। अगर आन्दोलन विवाद के हल के लिए हाई कोर्ट में जाने का क़ानूनी क़दम उठाता है तो क़ानूनी लड़ाई आगे बढ़ सकती है। इससे संघर्षरत मज़दूरों का उत्साह भी बढ़ेगा। जैसाकि हमने पहले कहा है, दोनों तरह के संघर्षों के बीच सीधा रिश्ता होता है।

अस्ति का मज़दूर आन्दोलन आज दो स्तरों पर इन्हीं चुनौतियों का सामना कर रहा है: सड़क का संघर्ष और क़ानूनी संघर्ष। जब तक इन दोनों स्तरों पर समस्याएँ बनी रहेंगी, आन्दोलन को लम्बे समय तक जारी रखना कठिन होता जायेगा। दूसरी ओर, अगर अस्ति के मज़दूरों का नेतृत्व इन चुनौतियों की पहचान करने में सफल रहा और उन्हें हल करने की दिशा में आगे बढ़ा, तो संघर्ष आगे जा सकता है और इलाके के अन्य कारख़ानों के मज़दूरों से समर्थन भी हासिल कर सकता है। यह तमाम कारख़ानों के ठेका और कैजुअल मज़दूरों का साझा संघर्ष भी बन सकता है।

– ऑटो मज़दूर संघर्ष समिति की रिपोर्ट

गीता प्रेस – धार्मिक सदाचार व अध्यात्म की रोशनी फैलाने की आड़ में मज़दूरों की मेहनत निचोड़कर धन कमाने का धन्धा

पेज 1 से आगे)

गीता प्रेस में लगभग 315 मज़दूर ठेके और कैजुअल पर काम करते हैं। इनकी कोई ईएसआई की कटौती नहीं की जाती। इनको 4500 रुपये वेतन देकर सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मज़दूरी 8000 रुपये पर हस्ताक्षर कराया जाता है। धर्म के नाम पर मज़दूरों की लूट का इससे बेहतर उदाहरण भला और क्या हो सकता है कि "सेवा भाव" के नाम पर इनसे एक घण्टे बिना मज़दूरी दिये काम लिया जाता है। उक्त ठेके का काम गीता प्रेस परिसर में तथा प्रेस से बाहर सामने रामायण भवन तथा भागवत भवन नाम के बिल्डिंग में कराया जाता है। इन्हें वेतन की पर्ची या रसीद तक नहीं दी जाती। इस सन्दर्भ में इनकी माँग थी कि ठेके व कैजुअल पर काम करने वाले सभी मज़दूरों को परमानेण्ट किया जाये। परमानेण्ट होने की अवधि से पहले ठेका क़ानून 1971 के मुताबिक़ उनको समान काम के लिए समान वेतन, डबल रेट से ओवरटाइम, पीएफ़, ईएसआई, ग्रेच्युटी आदि सभी सुविधाएँ मुहैया करायी जायें। ठेका मज़दूरों को वेतन-स्लिप या रसीद तक नहीं दी जाती, वो उन्हें मुहैया करायी जाये।

न्यूनतम वेतन विवाद को प्रशासनिक स्तर पर सुलझाने की गीता प्रेस के मज़दूरों ने पूरी कोशिश की। मज़दूरों ने जिलाधिकारी के पास शिकायती प्रार्थनापत्र भेजा तो जिलाधिकारी ने डीएलसी को इस मामले के निस्तारण का आदेश दिया। परन्तु जब उपश्रमायुक्त के समक्ष वार्ता शुरू हुई तो पहले ही उपश्रमायुक्त ने यह कहकर हाथ खड़े कर दिये कि उनका काम समझौता कराना है शासनादेश लागू करवाना नहीं, इसके लिए वे कोर्ट जायें। जबकि हाईकोर्ट द्वारा मज़दूरों के पक्ष में 23.12.2010 को निर्णय सुनाया जा चुका है। ज़ाहिर है कि इस मामले में उपश्रमायुक्त व गीता प्रेस के प्रबन्धन की मिलीभगत है। वैसे भी श्रमविभाग मालिकों व प्रबन्धकों की जेब में रहता है, यह बात तो जगज़ाहिर है।

मज़दूरों ने प्रबन्धन स्तर पर मामला सुलझा लेने की बहुतेरी कोशिशें कीं कि क्या पता प्रबन्धन को नैतिकता व सदाचार की बात याद आ जाये। कोई नतीजा न निकलने पर आन्दोलन की शुरूआत हुई। 3 दिसम्बर को सांकेतिक प्रदर्शन किया। जिस के बाद प्रबन्धन बात करने को राजी हुआ। लेकिन प्रबन्धन बहुत घटिया किस्म के ब्लैकमेल पर उतारू हो गया। प्रबन्धन ने किसी तरह की बात के लिए यह शर्त रखी कि पहले मज़दूर 1992 वाले मुक़दमे के सन्दर्भ में कोर्ट में जाकर यह कहें कि इससे हमारा कोई वास्ता नहीं। और भविष्य में किसी भी तरह की माँग लेकर कोर्ट नहीं जायेंगे। ज़ाहिर है प्रबन्धन निर्बाध लूट की आज़ादी चाहता है। आन्दोलन जब ज़ोर पकड़ रहा है तो प्रबन्धन साम-दाम-दण्ड-भेद सबका इस्तेमाल करने में लग गया है। सारे ठेका मज़दूरों को प्रबन्धन धमका रहा है कि अगर वह आन्दोलन में शामिल हुए तो उनको निकाल बाहर कर दिया जायेगा। इसके पहले दो मज़दूरों चन्द्रशेखर ओझा, स्वामी नाथ गुप्ता को बाहर किया जा चुका है। परन्तु ठेका मज़दूर प्रबन्धन की धमकी को धता बताकर पूरी तरह से आन्दोलन में शामिल हो गये हैं।

गीता प्रेस के सामने से जुलूस निकालते मज़दूर

मज़दूरों ने बताया कि कहने को तो गीता प्रेस नो प्रॉफ़िट-नो लॉस पर चलता है, परन्तु वास्तव में हम लोगों की मेहनत को लूट-लूटकर प्रबन्धन करोड़ो-अरबों की सम्पत्ति खड़ा कर रहा है। गीता प्रेस के सेवायोजक शासनादेश का पालन नहीं कर रहे हैं, बल्कि इसमें कुछ-न-कुछ कमी निकालकर कोर्ट में रिट दाख़िल करते रहे हैं, जिस कारण मज़दूरों के वेतन-भत्ता के एरियर के रूप में बकाया करोड़ों रुपये की रक़म को गीता प्रेस के ट्रस्टीगणों ने अपने निजी व्यवसाय में लगा रखा है। इसलिए मज़दूरों की माँग न मानने के लिए ये अड़े हैं। मज़दूर भी अब उत्तर प्रदेश सरकार से माँग कर रहे हैं कि करोड़ों रुपये बकाये वेतनभत्ते की वसूली सरकार इन ट्रस्टीगणों से करके हर मज़दूर का भुगतान करे तथा इस ट्रस्ट बोर्ड को सरकार भंग कर इसे अपने हाथ में लेकर यहाँ रिसीवर बैठाये और ट्रस्ट बोर्ड का संचालन ज़िलाधिकारी के संरक्षण में हो।

गीता प्रेस की किताबें सस्ती होने का कारण यह है कि धर्म के नाम पर गीता प्रेस को टैक्स में भारी छूट मिलती है। दूसरे धर्म के नाम पर बहुत सारे धनकुबेर बहुत बड़ी मात्रा में दान और चढ़ावा चढ़ाते रहते हैं। वहीं दैनन्दिनी, पंचांग पोस्टर आदि की पूरे देश में और विदेशों में लाखों की संख्या में बिक्री होती है जिससे करोड़ों रुपये की आय होती है। यह भी टैक्स की सीमा से बाहर है।

बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने गीता प्रेस के मज़दूरों के आन्दोलन को तत्काल सक्रिय समर्थन दिया। मज़दूरों की सभा में बिगुल के कार्यकर्ताओं ने सुझाव दिया कि इस मसले को गोरखपुर शहर के नागरिकों के बीच भी ले जाया जाये। मज़दूरों की आम सहमति से प्रकाशित पर्चे को मज़दूरों के साथ ही शहर में व्यापक रूप से बाँटा जा रहा है। बिगुल मज़दूर दस्ता ने गीता प्रेस के मज़दूरों के सामने यह प्रस्ताव भी रखा कि गोरखपुर शहर के सभी प्रिंटिंग मज़दूरों की पेशागत यूनियन बनाने की तरफ़ बढ़ा जाये क्योंकि इसके बग़ैर वे आने वाले दिनों में मज़दूरों के हक़ों पर होने वाले हमलों से ख़ुद को बचा पाने में सक्षम नहीं होंगे।

आन्दोलन शुरू होते ही गीता प्रेस का "सदाचारी", "आध्यात्मिक" प्रबन्धन अब अपना रामनामी दुपट्टा उतारकर असली रूप में सामने आ गया है। ठेका मज़दूरों को परमानेण्ट मज़दूरों की लड़ाई से अलग करने के लिए ठेका मज़दूरों को धमकाने की चाल जब काम न आयी तो उसने 6 अगुवा मज़दूरों में से 4 को बाहर निकालने की नोटिस लगा दिया। प्रबन्धन की इस गीदड़ भभकी के पीछे दरअसल उसका यह डर काम कर रहा था कि मज़दूर काम पर आने और जाने के समय तथा लंच के समय गीता प्रेस के प्रबन्धन व धर्म के नाम पर धन्धे के ख़िलाफ़ जो नारा लगाते हैं, उससे जनता के बीच गीता प्रेस की पोलपट्टी खुल जायेगी। प्रबन्धन को यह उम्मीद थी कि सम्भवत: इससे मज़दूर डर जायेंगे, लेकिन नोटिस देखने के बाद मज़दूरों ने काम छोड़कर प्रबन्धक को घेर लिया। फिर प्रबन्धन ने पलटी मारते हुए मज़दूरों से कहा कि नोटिस से नाम वापस ले लिया जायेगा, लेकिन मज़दूर आने-जाने और लंच के समय प्रबन्धन के ख़िलाफ़ नारे लगाना बन्द कर दें। लेकिन मज़दूर जब काम से छूटे तो उन्होंने रोज़ाना से ज़्यादा ज़ोरदार तरीक़े से और आस-पास के मार्किट में घूमकर प्रबन्धन के ख़िलाफ़ नारे लगाये तथा बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा और गीता प्रेस के अगुवा मज़दूरों की अगुवाई में जुलूस निकाला। जुलूस के दौरान धर्म के नाम पर धन्धा बन्द हो, मज़दूरों का शोषण बन्द हो, मज़दूरों की मेहनत की कमाई से व्यवसाय करना बन्द करो, ख़ून-पसीने की कमाई हमें चाहिए पाई-पाई, श्रम क़ानूनों को लागू करो, इन्कलाब ज़िन्दाबाद आदि नारे लगाये जा रहे थे। जुलूस के बाद गीता प्रेस के पास ही सभा हुई जिसमें गीता प्रेस के मज़दूरों की तरफ़ से मुनीश्वर मिश्र ने बात रखी कि प्रबन्धन का अनाचारी चेहरा एकदम नंगा हो चुका है और गीता प्रेस के मज़दूर इस लड़ाई को अंजाम तक पहुँचाने की ठान चुके हैं। बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से प्रसेन व नौजवान भारत सभा की ओर से अंगद ने कहा कि हमें अपने संघर्ष को अंजाम तक पहुँचाने के लिए इस आन्दोलन को और व्यापक तथा जुझारू बनाना होगा क्योंकि गीता प्रेस के मज़दूरों के आन्दोलन की ख़बर ज्यों-ज्यों फैल रही है तो धर्म के नाम पर व्यवसाय करनेवाले, तमाम धार्मिक पाखण्डियों और उनके सरपरस्तों की बौखलाहट बढ़ गयी है। फेसबुक पर नौजवान भारत सभा के पेज पर गाली-गलौच भरे पोस्ट इसका एक प्रमाण हैं। मज़दूरों के आन्दोलन को बदनाम करने के लिए कल को प्रबन्धन लोगों की धार्मिक आस्था का इस्तेमाल करेंगे कि गीता प्रेस धर्म-अध्यात्म का काम करती है, और गीता प्रेस के मज़दूरों को कोई बाहर वाला संगठन उकसा रहा है आदि-आदि। प्रबन्धन ने इसका भी संकेत दे दिया है, क्योंकि जिन मज़दूरों के नाम नोटिस लगे थे उनके बारे में प्रबन्धन कुतर्क कर रहा था कि ये मज़दूरों को गीता प्रेस के ख़िलाफ़ भड़का रहे हैं। हालाँकि मज़दूरों ने प्रबन्धकों को घेर लिया और कहा कि उनको किसी ने भड़काया नहीं है, बल्कि प्रबन्धन के लूट और शोषण के ख़िलाफ़ वे ख़ुद आन्दोलन पर उतरे हैं।

– प्रसेन

पूरे शहर में पर्चे बाँटते हुए मज़दूरों का जुलूस जिलाधिकारी कार्यालय पहुँचा

नागरिकों के नाम मज़दूरों की अपील

15 दिसम्बर को गीता प्रेस के सैकड़ों मज़दूर एक विशाल जुलूस निकालते हुए जिलाधिकारी कार्यालय ज्ञापन देने पहुँचे। यह जुलूस गीता प्रेस से रेती चौक, घोष कम्पनी चौराहा, सदर हास्पिटल, टाउन हाल चौराहा, कचहरी चौराहा होते हुए जिलाधिकारी कार्यालय पहुँचा। पूरे जुलूस के दौरान हज़ारों पर्चे बाँटे गये। ये पर्चा गीता प्रेस के मज़दूरों ने गीता प्रेस के प्रबन्धकों द्वारा धर्म के नाम पर मज़दूरों की लूट का भण्डाफोड़ करते हुए गोरखपुर के नागरिकों को मज़दूरों के हक की लड़ाई में सक्रिय समर्थन देने की अपील के रूप में निकाला था।

जिलाधिकारी कार्यालय पर यह जुलूस सभा में बदल गया। सभा में बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता प्रसेन और अंगद ने बात रखी। बिगुल मज़दूर दस्ता के आह्वान पर बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र से लक्ष्मी साइकिल रिम प्राइवेट लिमिटेड के मज़दूर भी जुलूस में शामिल हुए। इस कारखाने की 'इंजीनियरिंग वर्कर्स यूनियन' की तरफ से साथी रामाशीष ने बात रखी। बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओ ने बोल मजूरे हल्ला बोल गीत प्रस्तुत किया। ज्ञापन देने के बाद मज़दूरों का जुलूस गोलघर, चेतना तिराहा, विजय चौराहा, बैंक रोड, बख्शीपुर, साहबगंज मण्डी होते हुए पुन: गीता प्रेस पहुंचा। गीता प्रेस परिसर में पुन: सभा हुई । सभा में गीता प्रेस के मज़दूरों की तरफ से मुनीवर मिश्र, वीरेन्द्रसिंह ने बात रखी। माधयमिक शिक्षक संघ की तरफ से मार्कण्डेय सिंह तथा बिगुल मज़दूर दस्ता की तरफ से अंगद ने बात रखी। अंगद ने कहा कि एक तरफ भाजपा के नेता गीता को लेकर साम्प्रदायिक राजनीति कर रहे हैं दूसरी ओर मोदी श्रम कानूनों में सुधार ला रहे हैं ताकि पूँजीपतियों को मज़दूरों को लूटने में आसानी हो। उसी तरह गीता प्रेस का प्रबन्धन धर्म का हवाला देकर मज़दूरों की मेहनत को लूटकर अरबपति बन रहा है। पूरे देश में जो स्थितियाँ बन रही हैं उनको देखते हुए मज़दूरों को पेशागत यूनियन बनाने की दिशा में पहल करनी होगी। गीता प्रेस के मज़दूरों को भी गोरखपुर के प्रिण्टिंग मज़दूरों की पेशागत यूनियन बनाने की दिशा में पहल लेनी होगी। तभी वे लम्बे दौर में अपने हकों को सुरक्षित करने में सफल हो पायेंगे। आज के जुलूस के बाद बौखलाया प्रबन्धन ठेका मज़दूरों पर कोई कार्रवाई कर सकता है। ऐसी स्थिति में परमानेण्ट मज़दूरों को आगे बढ़कर ठेका मज़दूरों का साथ देना होगा।

छपते-छपते

15 दिसम्बर के प्रदर्शन के अगले ही दिन गीता प्रेस के प्रबन्धन ने बिना किसी घोषणा के प्रेस में तालाबन्दी कर दी और प्रशासन की ओर से वहाँ भारी पुलिस बल तैनात कर दिया गया। साफ है कि प्रबन्धन में बैठे गोरखपुर शहर के तमाम व्यापारी और उद्योगपति मज़दूरों की कोई भी जायज़ माँग मानने के बजाय उन्हें झुकाकर और डरा-धमकाकर आन्दोलन तोड़ने का हथकण्डा आज़मायेंगे। लेकिन मज़दूर आर-पार की लड़ाई लड़ने और धर्म के नाम पर लूट के कारोबार का भण्डाफोड करने के लिए कमर कसकर तैयार हैं।

छत्तीसगढ़ में नसबन्दी कैम्प के दौरान 14 महिलाओं की मौत

मामला सिर्फ़ मेडिकल लापरवाही या घटिया दवाओं का नहीं है!

पिछले दिनों छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर ज़िले में सरकार द्वारा आयोजित महिलाओं की नसबन्दी कैम्प में ऑपरेशन के बाद 14 युवा महिलाओं की दर्दनाक मृत्यु हो गयी। ऑपरेशन करनेवाले डॉक्टर से लेकर दवाइयाँ सप्लाई करने वाली कम्पनी समेत सब पर सवाल उठे हैं, गिरफ़्तारियाँ भी हुई हैं, सरकारी जाँच भी होगी, सरकारी मुआवज़े भी बाँटे जाने हैं, मन्त्रियों ने भी अफ़सोस प्रकट कर दिया है मगर ऐसे कैम्प लगते भी रहेंगे। इस घटना के बाद छत्तीसगढ़ में ही ऐसे एक और कैम्प के दौरान एक अन्य महिला की मृत्यु हो चुकी है। इस घटना को डॉक्टरों की लापरवाही, सरकारी भ्रष्टाचार का नतीजा बनाकर पेश किया जा रहा है, ज़्यादा से ज़्यादा कुछ लोग सरकारों की तरफ़ से डॉक्टरों को ऑपरेशनों के "कोटे बाँधने की नीति" की बात कर रहे हैं। बेशक ये सभी बातें भी अपनी जगह सही हैं, परन्तु असली मुद्दा तो भारत सरकार की आबादी सम्बन्धित नीति का है और समाज में मौजूद पितृ-सत्ता का है जिसके बारे में बहुत कम बात हो रही है, या कहें, बात हो ही नहीं रही है।

इस घटना का कारण ऑपरेशन के बाद दी गयी दवाओं में चूहेमार दवा का मिला होना बताया जा रहा है, कुछ रिपोर्टों के मुताबिक़ दवाओं की मियाद भी दो-तीन साल पहले ही गुज़र चुकी थी। दवाएँ बनाने वाली कम्पनी का सरकारी दरबार में रसूख था जिसके दम पर वह अपनी, घटिया और गुज़र चुकी मियाद वाली दवाएँ लोगों को खिला रही थी और वसूली सरकारी खाते से प्राप्त कर रही थी। इस तरह यह सरकारी भ्रष्टाचार का मामला बनता है, जिसमें कोई बड़ी बात नहीं कि मन्त्री तक शामिल होंगे और यह कोई छोटा मामला भी नहीं होगा, क्योंकि कम्पनी ने सिर्फ़ एक कैम्प के लिए तो दवा भेजी नहीं होगी, उसके पास एक निश्चित समय के लिए दवा सप्लाई का सरकारी ठेका होगा। कुल मिलाकर मन्त्री, स्वास्थ्य संस्थान के आला अफ़सरों समेत कई और ने इस सौदे में से "कमाई" की होगी। परन्तु इसकी पड़ताल शायद ही हो, दवा-कम्पनी के एक-दो आदमियों की गिरफ़्तारी और जाँच शुरू करने की कार्रवाई करके मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया जायेगा। दूसरा, इसमें डॉक्टरों की भूमिका पर भी बिना शक उँगली उठेगी ही। सबसे पहले वह कैम्प आयोजित करने वाली टीम के प्रमुख के तौर पर अपनी ज़िम्मेदारी से भाग नहीं सकते। डॉक्टर यह सब कुछ कह सकता है कि सरकार अपेक्षित साजोसमान मुहैया नहीं करवाती, थोड़े समय में एक डॉक्टर को बहुत ज़्यादा संख्या में ऑपरेशन करने के लिए मजबूर किया जाता है, ऑपरेशनों के कोटे बाँधे जाते हैं और कोटा पूरा न करने की सूरत में तनख़्वाह में कटौती और तरक्क़ी पर रोक जैसी धमकियाँ दी जाती हैं, दवाओं की सप्लाई के ठेके सरकारी तन्त्र तय करता है जिसमें ऑपरेशन करने वाले डॉक्टर की कोई भूमिका नहीं होती। परन्तु इन प्रत्येक तर्कों के बावजूद डॉक्टर बरी नहीं हो सकते, क्योंकि इन सब बातों से डॉक्टर अनजान नहीं होते और न ही छत्तीसगढ़ के इस कैम्प के डॉक्टर इन बातों से अनजान होंगे। ऐसे में मेडिकल विज्ञान की धज्जियाँ उड़ाने वाली अनियमितताओं के आगे सिर झुकाकर चलना भी तो विज्ञान के प्रति, पेशे के प्रति और पूरी मानवता के प्रति अपराध में ही शामिल है। क्या डॉक्टर की यह नैतिक ज़िम्मेदारी नहीं कि वह इन अनियमितताओं के ख़िलाफ़ बोले? बिल्कुल, यह उसकी ज़िम्मेदारियों में शामिल है, परन्तु आज के बहुसंख्यक डॉक्टर ऐसा नहीं करेंगे, क्योंकि वह डॉक्टर "कमाई, कार, बँगले" के लिए बने हैं और उनका निशाना "अधिक कमाई, बड़ी कार और बड़ा बँगला" होता है। ढाँचे की अनियमितताओं के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना उनके इस "सपने" के लिए "बुरा" हो सकता है। वे अपनी, तनख़्वाह, इनक्रिमेण्ट, तरक्क़ियों आदि के लिए तो लड़ सकते हैं, परन्तु विज्ञान के लिए, मेडिकल पेशे की पवित्रता के लिए और आम लोगों के हितों के लिए नहीं। सरकार की तरफ़ से कोटे बाँधने की नीति का विरोध भी तब ही होता है, जब कोई ऐसी घटना घटती है, वैसे क्या डॉक्टरों को दिखायी नहीं देता कि किस तरह बड़ी संख्या में ग्रामीण ग़रीब औरतों को पशुओं की तरह कैम्पवाली जगह इकट्ठा किया जाता है। वास्तव में यह डॉक्टरों को नहीं दिखायी पड़ता, क्योंकि एक तो उनके लिए भी आम ग़रीब लोग भीड़ और एक आम मनुष्य केवल एक "केस" होता है, दूसरा नसबन्दी ऑपरेशन के लिए उनको सरकार से "नक़द प्रोत्साहन" मिलता है। छत्तीसगढ़ के इस कैम्प में ऑपरेशन करने वाले डॉक्टर को भी कैम्प के बाद 6,225 रुपये "नक़द प्रोत्साहन" मिल चुका था। तीसरा और सबसे अहम यह कि उनके दिमाग में भी यह तर्क भरा हुआ है कि ग़रीब लोगों ने बच्चे पैदा कर-करके आबादी बढ़ा रखी है और इनके साथ इसी तरह से निपटा जाना चाहिए। अगर यह घटना न होती तो डॉक्टर को कुछ ग़लत नहीं लगता।

अब हम मुख्य मुद्दे की तरफ़ आते हैं, वह है सरकार की आबादी सम्बन्धित नीति और परिवार नियोजन प्रोग्राम के पीछे, ख़ासकर महिलाओं की नसबन्दी ऑपरेशनों पर ज़ोर के पीछे असली कारण और आधार। सबसे पहले तो यह नीति और नसबन्दी अभियान पूरी तरह से ग़रीब लोगों का विरोधी है, यह धनाढ्यों के संसार दृष्टिकोण का प्रतीक है। दूसरा, यह नीति और नसबन्दी अभियान भयंकर हद तक नारी-विरोधी है और यह समाज में मौजूद मर्द प्रधानता और महिलाओं की गुलामों वाली हालत का एक बहुत ही नीच दिखावा है, जिसका एक सभ्य समाज में कोई चलन नहीं हो सकता, परन्तु भारत समेत तीसरी दुनिया के सभी देशों में औरतों को इस अमानवीय व्यवहार का दशकों से शिकार बनाया जा रहा है।

भारत सरकार की आबादी नीति का मुख्य आधार यह है कि आबादी का बढ़ना ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी का बुनियादी कारण है, बढ़ती आबादी के कारण खुराक और पानी के स्रोतों और वातावरण पर मानवीय दबाव बढ़ रहा है, इसलिए आबादी को कण्ट्रोल करके खुराक और पानी की कमी और वातावरण की तबाही को रोका जा सकता है। अब क्योंकि कुल आबादी का बहुसंख्यक हिस्सा ग़रीब है, ज़्यादा बच्चे ग़रीब आबादी में पैदा होते हैं, इसलिए इस समूची तर्क-पद्धति का नतीजा यह है कि ग़रीबी, भुखमरी, खुराक और पानी की कमी और यहाँ तक कि वातावरण की तबाही के लिए ग़रीब आबादी ज़िम्मेदार है। यही वह तर्क-पद्धति है जिसके द्वारा पूँजीवादी ढाँचा अपने कुकर्मों की ज़िम्मेदारी अपने शिकार लोगों पर ही फेंक देता है, फिर इसको अपने बौद्धिक टुक्कड़खोरों के द्वारा ख़ूब प्रचारता है। वैसे सरकारी दलीलें यह भी कहती हैं कि परिवार नियोजन महिलाओं की सेहत की बेहतरी के लिए है, परन्तु ऐसा वास्तव में है नहीं क्योंकि सरकार परिवार नियोजन प्रोग्राम को जिस तरह चलाती है, उसका मुख्य उद्देश्य आबादी को "कण्ट्रोल" करना ही है, न कि महिलाओं की सेहत की चिन्ता। अगर कहीं ऐसा सम्भव होता भी है, तो उसके पीछे भी मकसद यह है कि पूँजीवादी ढाँचों में महिलाओं की काम की भी ज़रूरत है और ज़रूरी है कि महिलाओं की बड़ी संख्या भी काम करने के लिए काम-मण्डी में आये। और यह तो सम्भव हो सकता है कि औरतों को ज़्यादा बच्चों के जन्म के बोझ से कुछ हद तक "मुक्त" किया जाये!

ख़ैर हम बढ़ती आबादी, मतलब (धनाढ्यों के अनुसार) ग़रीबों द्वारा बढ़ाई आबादी (क्योंकि ऊपरी 15-20 प्रतिशत हिस्सा आबादी बढ़ाने में कोई योगदान नहीं डालता) की तरफ़ से पानी और खुराक के स्रोतों और वातावरण पर डाले जा रहे दबाव पर एक नज़र मारते हैं। सबसे पहले पानी का प्रयोग देखते हैं कि कौन पानी के स्रोतों पर बोझ बना हुआ है? दिल्ली का ही उदाहरण लें, दिल्ली में भारत के मानकीकरण बोर्ड की तरफ़ से दिल्ली के हरेक शहरी के लिए 160 लीटर/दिन पानी की ज़रूरत मानी है और दिल्ली में पानी की उपलब्धता 280-300 लीटर/दिन प्रति व्यक्ति है। परन्तु असली खपत यह नहीं है। उच्च आमदन वर्ग की पानी की उपभोग 250-600 लीटर/दिन प्रति व्यक्ति है, जबकि ग़रीब आबादी (मतलब कुल आबादी का 70 प्रतिशत हिस्सा) को सिर्फ़ 40 लीटर/दिन प्रति व्यक्ति पानी भी मुश्किल से मिलता है। दिल्ली के बड़े हिस्से को तो रोज़मर्रा की पानी की सप्लाई ही नहीं है, वहाँ एक दिन छोड़कर पानी आता है। और आगे, दिल्ली के पाँच-तारा होटलों के एक कमरे की पानी की उपभोग 1600 लीटर प्रतिदिन है, एक वी.आई.पी. मकान की रोज़मर्रा का पानी का उपभोग 30,000 लीटर है। प्रधानमन्त्री निवास और राष्ट्रपति भवन रोज़मर्रा की 70,000-70,000 लीटर पानी सटक जाते हैं, मन्त्रियों और बहुत ही अमीर बिज़नेसमैन, पूँजीपतियों आदि के घर 30,000-45,000 लीटर पानी रोज़ाना का पीते हैं। सरकारी सूत्रों के अनुसार ही दिल्ली में पानी की कुल उपभोग में से 40 प्रतिशत अनावश्यक होती है, मतलब बर्बादी होती है। अनावश्यक प्रयोग का कारण उद्योग में प्रयोग, घरों में कारों को धोना, कुत्ते नहलाने, खुला पानी छोड़कर फ़र्श धोने, सार्वजनिक जगहों पर खराब नल हैं। अब इन प्रत्येक "मानवीय सरगर्मियों" में ग़रीबों की कोई भूमिका नहीं है। ये आँकड़े सरकारी सप्लाई के हैं, धरती में से मोटरें लगाकर पानी के इस्तेमाल वाले आँकड़े अलग हैं, यह काम भी आज कोई ग़रीब तो कर नहीं सकता, इसलिए पानी का यह प्रयोग भी ऊपरी 15-20 प्रतिशत आबादी ही करती है। पूरे भारत में एक-तिहाई आबादी को तो साफ़ पीने वाला पानी तक नहीं मिलता। मध्यप्रदेश में 40 प्रतिशत घरों को रोज़मर्रा का 40 लीटर पानी भी उपलब्ध नहीं है। ज़ाहिर है कि यह सारी आबादी ग़रीब आबादी है। संसार स्तर पर भी यही हाल है। अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, जापान, इटली जैसे देशों में प्रति व्यक्ति पानी का उपभोग 300 लीटर/दिन है, जबकि रवाण्डा, इथोपिया, हैती, मौजम्बीक जैसे ग़रीब देशों में यह 15 लीटर/दिन प्रति व्यक्ति है। इससे साफ़ हो जाता है कि पानी के स्रोतों पर बोझ कौन बना हुआ है।

थोड़ी बात खुराक के स्रोतों के बारे भी। अमरीका में प्रति व्यक्ति अनाज, दालें आदि खुराकी चीज़ों का उपभोग प्रति व्यक्ति 1,046 किलो/साल है, भारत में यह 178 किलो/साल है और अन्य बहुत से ग़रीब देशों में यह इससे भी कम है। 178 किलो/साल भारत के लिए सिर्फ़ औसत ही है। यहाँ का ऊपरी 15-20 प्रतिशत हिस्सा किसी भी पक्ष से एक आम अमरीकी से, और कुछ हद तक तो अमरीकी अमीरों से भी कम उपभोग नहीं करता, जबकि ग़रीब आबादी को अपने शरीर की कैलोरी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए भी अनाज नहीं मिलता। वातावरण तबाही पर भी यही बात लागू होती है। कुल मिलाकर देखा जाये तो यह स्पस्ट है कि खुराक और पानी के स्रोतों पर दबाव और वातावरण की तबाही में ग़रीब बहुसंख्यक आबादी की कोई भूमिका ही नहीं है, इसकी ज़िम्मेदार धनाढ्य और उच्च-मध्यवर्ग की एक बहुत छोटी अल्पसंख्या है। अगर खुराक, पानी और वातावरण की सुरक्षा यकीनी बनाने के लिए नसबन्दी करनी ही है तो नसबन्दी ग़रीबों से नहीं, ऊपर के 15-20 प्रतिशत से शुरू होनी चाहिए जिससे इन परजीवियों की और पीढ़ियाँ पैदा होकर धरती को तबाह न कर सकें।

नसबन्दी ऑपरेशन के साथ जुड़ा दूसरा, बहुत ही अमानवीय पहलू समाज में महिलाओं के दबाये जाने के साथ जुड़ा हुआ है। भारत जैसे देशों में तो ख़ास तरह के ऐतिहासिक विकास के कारण औरतों पर दबाव और मर्द-प्रधानता बेहद भयंकर है। यहाँ बच्चा पैदा करने की पूरी प्रक्रिया की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ महिलाओं पर डाल दी जाती है, इसलिए अगर और बच्चा नहीं चाहिए तो यह स्त्री की ज़िम्मेदारी है कि वह इसके लिए ऑपरेशन करवाये। समाज में महिला को ऑपरेशन के लिए मजबूर किया जाता है, न कि उसकी सहमति ली जाती है। एक तरफ़ मर्द की सत्ता उसको मजबूर करती है, दूसरी तरफ़ नसबन्दी ऑपरेशनों को उत्साहित करने के लिए दी जाती सरकारी "नक़द प्रोत्साहन" प्राप्त करने के लिए सेहत कर्मचारी (जो मुख्य रूप में औरतें ही होती हैं) भी औरतों को ही "सहमत" करवाते हैं, क्योंकि एक तो मर्दों के साथ यह बात करनी ही मुश्किल है, दूसरा वह भी इस मर्द-प्रधान सोच के साथ सहमत ही होते हैं कि ऐसा करने की ज़िम्मेदारी महिला की ही बनती है। सरकारी नीतिशास्त्री चाहे वह मर्द हों या औरतें, भी इसी मर्द-प्रधान सोच की पैदाइश और प्रतिनिधित्व करते हैं। दुनिया के कुल ऐसे ऑपरेशनों में से 37 प्रतिशत भारत में होते हैं जोकि बाक़ी सभी देशों से कहीं ज़्यादा है, जबकि भारत में दुनिया की कुल आबादी का 17 प्रतिशत हिस्सा ही निवासी है। भारत में होते कुल नसबन्दी ऑपरेशनों में से लगभग सभी ही (97.14 प्रतिशत, कई प्रान्तों में यह प्रतिशत 99 प्रतिशत से भी ज़्यादा है) औरतों के होते हैं। ऐसा इस जानकारी के मौजूद होने के बावजूद होता है कि महिलाओं में नसबन्दी ऑपरेशन मर्दों के नसबन्दी ऑपरेशन के मुकाबले तकनीकी रूप में तो कठिन होता ही है, इसमें जान जाने का ख़तरा मौजूद है जबकि मर्दों के नसबन्दी ऑपरेशन में जान जाने का कोई ख़तरा नहीं है। भारत सरकार के अनुसार साल 2008-2012 के दौरान नसबन्दी ऑपरेशनों के कारण 675 महिलाओं की मृत्यु हुई, और 438 अन्य को ऑपरेशन के कारण स्वास्थ्य का नुक़सान उठाना पड़ा। यह संख्या उन मौतों की है जो कहीं दर्ज हुईं, मृत्यु दर कम दिखाने के लिए नसबन्दी ऑपरेशन के साथ जुड़ी मौतों की काफ़ी संख्या दर्ज ही न होने की बात कई रिपोर्टों ने की है। दूसरी तरफ़ मर्दों की नसबन्दी ऑपरेशन के कारण मृत्यु की कोई सम्भावना ही नहीं है, अब तो इस ऑपरेशन में चीरा देने पर टाँका लगाने की भी ज़रूरत नहीं है और तकनीकी पक्ष से बहुत आसान हो चुका है, परन्तु सरकारों की तरफ़ से इसको उत्साहित करने और महिलाओं के ऑपरेशन को निरुत्साहित करने की कोई योजना नहीं बनी है। औरतों को, ख़ासकर ग्रामीण और ग़रीब औरतों को, समाज में "आसान

(पेज 2 पर जारी)

"अच्छे दिनों" में थैलीशाहों की हुई चाँदी

मोदी सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को औने-पौने दामों में निजी पूँजीपतियों को बेचने के लिए कमर कसी

मोदी सरकार के सत्ता में क़ाबिज़ होने के बाद से ही इस देश के पूँजीपतियों, सेठ-व्यापारियों, ठेकेदारों, दलालों और सट्टेबाजों के अच्छे दिन आ गये हैं और उनकी बाँछें खिली-खिली नज़र आ रही हैं। वैसे तो आज़ादी के बाद से हर सरकार ने अपने-अपने तरीक़े से पूँजीपति वर्ग की चाकरी की है, लेकिन अपने कार्यकाल के शुरुआती छह महीनों में ही मोदी सरकार ने इस बात के पर्याप्त संकेत दिये हैं कि उसने चाकरी के पुराने सारे कीर्तिमान ध्वस्त करने का बीड़ा उठा लिया है। देशी-विदेशी पूँजपतियों को लूट के नये-नवेले ऑफ़र दिये जा रहे हैं। एक ओर यह सरकार विदेशी पूँजी को रिझाने के लिए मुख़्तलिफ़ क्षेत्रों में विदेशी पूँजी के सामने लाल कालीनें बिछा रही है, वहीं दूसरी ओर देशी पूँजी को भी लूट का पूरा मौक़ा दिया जा रहा है। पूँजी को रिझाने के इसी मक़सद से अब मोदी सरकार आज़ादी के छह दशकों में जनता की हाड़-तोड़ मेहनत से खड़े किये गये सार्वजनिक उद्यमों को औने-पौने पर बेचने के लिए कमर कस ली है।

वित्तमन्त्री अरुण जेटली ने अपने पहले बजट में ही विनिवेश और निजीकरण की प्रक्रिया को गति देने की सरकार की मंशा ज़ाहिर कर दी थी। सितम्बर के महीने में कैबिनेट ने इस प्रक्रिया के पहले चरण को हरी झण्डी दे दी जिसके तहत लाभ कमाने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की बड़ी कम्पनियों जैसे ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन (ओएनजीसी), कोल इण्डिया लिमिटेड (सीआईएल), नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर कॉरपोरेशन (एनएचपीसी) और स्टील अॅथारिटी ऑफ़ इण्डिया लिमिटेड (सेल) में सरकार के शेयर बेचकर लगभग 45,000 करोड़ रुपये इकट्ठे करने की योजना है। दिसम्बर के पहले सप्ताह में सरकार ने सेल के 5 प्रतिशत शेयर निजी खिलन्दड़ों के हवाले करते हुए इस बम्पर सेल का आग़ाज़ किया।

विनिवेश की इस प्रक्रिया को जायज़ ठहराने के लिए सरकार यह तर्क दे रही है कि इससे राजकोषीय घाटे को पाटने में मदद मिलेगी और यह प्रक्रिया राजकोषीय घाटे को पाटने की दूसरी प्रक्रिया यानी बॉण्ड या सिक्योरिटीज़ जारी करने से बेहतर है क्योंकि इस रास्ते से सरकार पर क़र्ज़ का बोझ नहीं पड़ेगा। इस क़िस्म का तर्क देने वाले यह नहीं बताते कि इन उद्यमों के शेयर बेचने से क़र्ज़ का बोझ भले ही न बढ़े लेकिन एक बार बेच देने के बाद वह फिर स्थायी रूप से उसका मालिकाना हक़ खो देगी। दूसरे यदि सरकार का लक्ष्य सिर्फ़ राजकोषीय घाटे को कम करना होता तो उसके लिए सबसे बेहतर और न्यायसंगत रास्ता तो यह होता कि वह अमीरों और देशी-विदेशी कॉरपोरेट घरानों से ज़्यादा कर वसूल करके अपनी आय बढ़ा सकती है। परन्तु कॉरपोरेट्स के करों में बढ़ोतरी तो दूर, इस साल के बजट दस्तावेज़ के अनुसार भारत सरकार ने अकेले वित्तीय वर्ष 2013-14 के दौरान कॉरपोरेट्स को कुल 5.32 लाख करोड़ रुपये की करों में छूट दी। प्रसिद्ध पत्रकार पी साईनाथ ने दिखाया है कि वर्ष 2005 से लेकर अब तक भारत सरकार ने कॉरपोरेट्स के करों 36.5 खरब रुपये की छूट दी है। इसे उन्होंने उचित ही कॉरपोरेट क़र्ज़ा माफ़ी का नाम दिया है। यदि वर्तमान सरकार का मुख्य उद्देश्य वाकई राजकोषीय घाटे को कम करना ही होता तो यह इस क़र्ज़ा माफ़ी को वापस लेते हुए कॉरपोरेट घरानों पर करों को बोझ बढ़ाकर बहुत आसानी से किया जा सकता था। परन्तु न सिर्फ़ इस सरकार ने इस कॉरपोरेट क़र्ज़ा माफ़ी को जारी रखा बल्कि, वोडाफ़ोन और अमेज़न जैसी बहुराष्ट्रीय विदेशी कम्पनियों को हज़ारों करोड़ रुपये के करों से मुक्त करने की कवायदें कर रही है।

दरअसल राजकोषीय घाटा तो एक बहाना है, सरकार का असली मक़सद तो नव-उदारवाद के मूल-स्तम्भ यानी निजीकरण की प्रक्रिया को गति देना है ताकि आने वाले दिनों में सार्वजनिक उपक्रमों को पूरी तरह से देशी-विदेशी पूँजीपतियों के हवाले कर दिया जाये। अब सरकार खुलकर तो इस मंशा को ज़ाहिर नहीं कर सकती, इसलिए वह राजकोषीय घाटे को पाटने अथवा सार्वजनिक उपक्रमों की कार्यकुशलता बढ़ाने के तर्क को आगे करती है।

पूँजीवाद में हर चीज़ का एक बिकाऊ माल में तब्दील होना तय है।

अभी हाल ही में मोदी ने रेलवे स्टेशनों पर यात्री सुविधाओं में भी निजीकरण की प्रक्रिया शुरू करने की बात की। इस सरकार के विभिन्न मन्त्री सीआईआई और फिक्की जैसे पूँजीपतियों के संगठनों में जाकर उन्हें लुटेरी नव-उदारवादी नीतियों पर तेज़ी से अमल करने की अपनी प्रतिबद्धताओं के बारे में आश्वासन देते हैं और आगे का रोडमैप बताते हैं कि किस-किस क्षेत्र में विदेशी निवेश की अनुमति देने वाले हैं और किस क्षेत्र में निजीकरण को बढ़ावा देने की योजना है। कॉरपोरेट घरानों के टुकड़ों पर पलने वाले तमाम ख़बरिया चैनल इन्हीं रोडमैपों के लिए जनमत तैयार करने के लिए फ़िज़ूल की बहस आयोजित करते हैं, जिनमें वे बहस का चौखटा इसी बात तक सीमित रखते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों एवं सार्वजनिक उपक्रमों को निजी हाथों में सौंपने का सबसे बेहतर तरीक़ा कौन सा है। वे कभी भी इस मूल मुद्दे को नहीं उठाते कि देश की अकूत सम्पदा और सार्वजनिक उपक्रमों को निजी हाथों को बेचना अपने-आपमें एक महा घोटाला है, भले ही यह ख़रीद-फ़रोख़्त पारदर्शी तरीक़े से की गयी हो और भले ही इस प्रक्रिया में सरकार को अपेक्षा के मुताबिक़ राशि मिल गयी हो। यहाँ तक कि न्याय की हिफ़ाज़त करने का दावा करने वाले न्यायालय भी इस मूल घोटाले पर चुप्पी साध लेते हैं। अभी हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने कोयला घोटाले में अपना फ़ैसला सुनाया, जिसमें उसने पिछली सरकार द्वारा आवँटित कोयला ब्लॉकों के आवँटन को रद्द कर दिया। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने भी इस देश की अपार खनिज सम्पदा को निजी हाथों में सौंपना अपने-आपमें कोई घोटाला नहीं माना, उसकी आपत्ति बस इसे सौंपने की प्रक्रिया को लेकर थी। संक्षेप में कहें तो मीडिया और न्यायालय को भी लूट से कोई दिक़्क़त नहीं है, बस उसका तरीक़ा पारदर्शी होना चाहिए ताकि सभी लुटेरों को बराबर का मौक़ा मिले और किसी भी लुटेरे के साथ भेदभाव न हो।

मोदी सरकार द्वारा विनिवेश और निजीकरण की प्रक्रियाओं में तेज़ी लाने से ऐसे तमाम वामपन्थी इन दिनों बहुत मायूस हैं जो पब्लिक सेक्टर को ही समाजवाद का पर्याय मानते हैं। ये वही लोग हैं जो आज भारत के शासक वर्ग द्वारा नेहरू की तिलांजलि देने के बाद नेहरू को रूँधे गलों के साथ याद कर रहे हैं और नेहरूवादी समाजवाद के प्रति नॉस्टैल्जिक हो रहे हैं। यही लोग योजना आयोग के भंग होने पर भी छाती पीटकर मातम मना रहे हैं। ऐसे वामपन्थी यदि अपनी भावना के साथ थोड़ा विवेक एवं विज्ञान का सहारा लें तो पायेंगे कि जिस नेहरूवादी समाजवाद को वे अब तक समाजवाद समझते आये हैं, वह दरअसल राजकीय पूँजीवाद था। आज़ादी के समय भारत के उदीयमान पूँजीपति वर्ग के पास इतनी ताक़त ही नहीं थी कि वह निजी पूँजी के दम पर भारत के पूँजीवादी विकास की आधारशिला रख पाता। इसीलिए उसने पब्लिक सेक्टर के रास्ते पूँजीवाद की नींव तैयार करना तय किया जिसका अर्थ था जनता की हाड़तोड़ मेहनत से अर्जित बचत को बुनियादी और अवरचनागत उद्योगों में लगाया जाये। जनता के बीच समाजवाद की सहज स्वीकार्यता को देखते हुए जनता को झाँसा देने के लिए इसे समाजवाद का मॉडल कहा गया। परन्तु शासन-प्रशासन तथा उत्पादन के ढाँचे पर पूँजीपति वर्ग का नियन्त्रण बना रहा। 1980 के दशक तक आते-आते भारत का पूँजीपति वर्ग परिपक्व हो चुका था और पब्लिक सेक्टर का ढाँचा उसके लिए अप्रासंगिक हो चुका था। इसलिए 1990 के दशक की शुरुआत में उसने समाजवाद का चोला उतार फेंका और अपने असली रूप यानी पूँजीवादी रूप में सामने आया। उसी समय विनिवेश और निजीकरण की प्रक्रिया की भी शुरुआत हुई जो आज भी जारी है। इस प्रक्रिया पर कमोबेश सभी पार्टियों में आम सहमति है और नवउदारवाद के दौर में केन्द्र अथवा राज्य में सरकार में रही तमाम पार्टियों ने इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाया है। मोदी सरकार अन्य सरकारों से बस इस मायने में अलग है कि वह इस प्रक्रिया में अभूतपूर्व तेज़ी ला रही है।

यह प्रक्रिया आने वाले दिनों में और भी गति पकड़ेगी। अभी तो इन "नवरत्नों" के कुछेक मणि बेचे जा रहे हैं, नवउदारवाद का तर्क यह कहता है कि आनेवाले दिनों में नवरत्नों की पूरी थैली ही थैलीशाहों के हवाले कर दी जायेगी। जो लोग यह समझते हैं कि इस प्रक्रिया को उलटकर वापस नेहरूवादी समाजवाद के युग में जाया जा सकता है, वे बहुत बड़े भ्रम में जी रहे हैं। नवउदारवाद की यह प्रक्रिया अपने अन्तरविरोधों से सर्वहारा क्रान्ति की दिशा में बढ़ेगी और सर्वहारा क्रान्ति के पश्चात सर्वहारा वर्ग की पार्टी के नेतृत्व में किया गया राष्ट्रीयकरण यानी वास्तविक समाजवाद इसकी तार्किक परिणति है। इसलिए अतीत के नॉस्टैल्जिया में जीने की बजाय भविष्य का रास्ता समझकर मज़दूर वर्ग को संगठित होकर लुटेरों से एक-दो मोतियों की फ़रियाद करने की बजाय पूरी दुनिया ही अपने क़ब्ज़े में करने की तैयारी करनी चाहिए।

– आनन्द सिंह

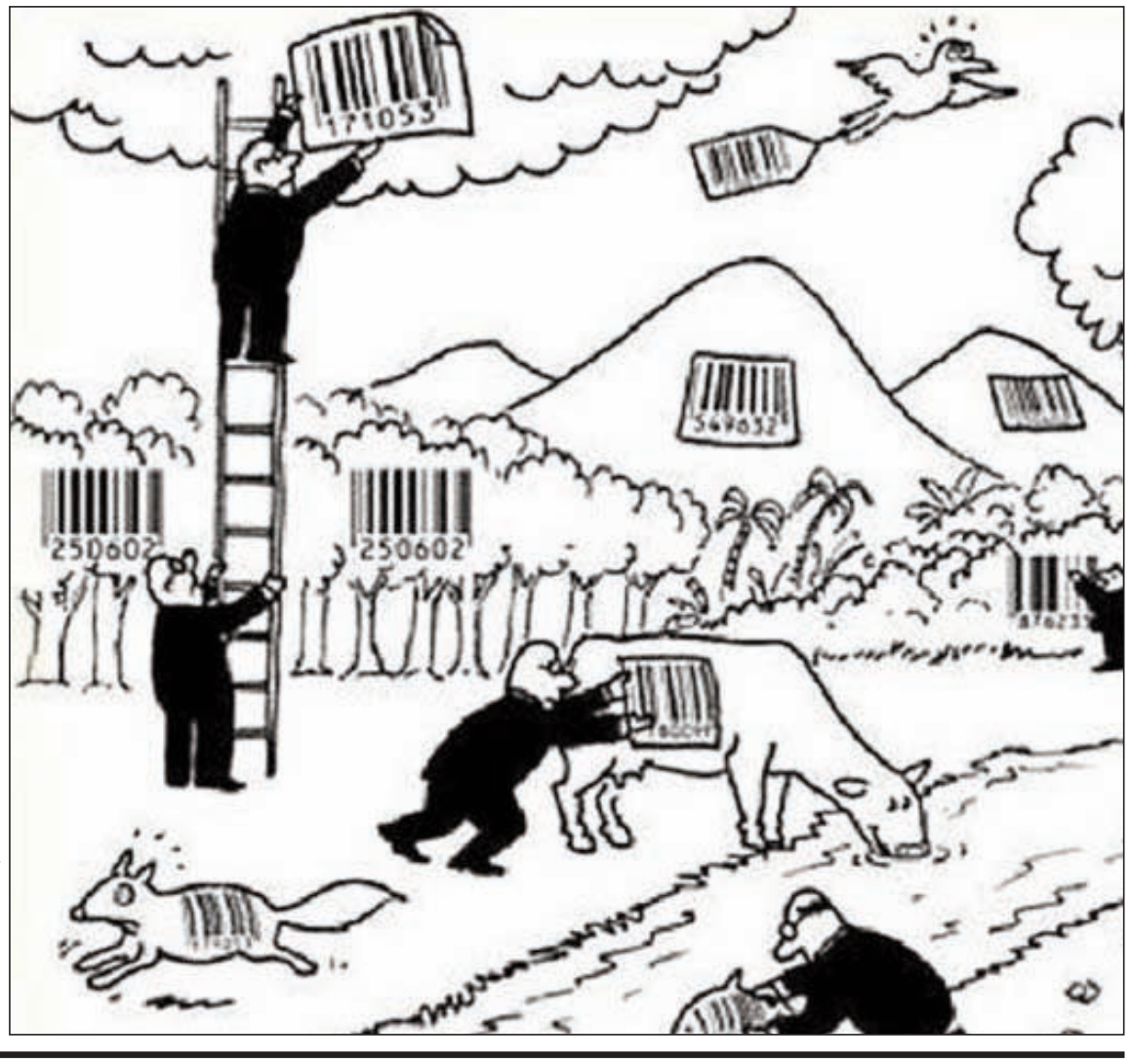

साम्राज्यवादी संकट के समय में सरमायेदारी के सरदारों की साज़िशें और सौदेबाज़ियाँ और मज़दूर वर्ग के लिए सबक

पेज 1 से आगे)

जायेंगी! साथ ही, मोदी ने ऑस्ट्रेलिया में कोयला खदानों का ठेका अपने 'करीबी मित्र' अदानी को दिलावाया। मोदी ने भारतीय पूँजीपति वर्ग की बढ़ती ताक़त को भी दुनिया के पूँजीवादी मुखियाओं के सामने पेश किया और उसके लिए विश्व पैमाने पर मज़दूरों की लूट में अधिक हिस्से की माँग की।

हम मज़दूरों को यह समझना होगा कि आज पूँजी का भूमण्डलीकरण हो चुका है और वह दुनिया के पैमाने पर आपस में जुड़ चुकी है। ऐसे में, विश्व पूँजीवाद के मुखिया दुनिया के किसी भी कोने में इकट्ठा होकर अपने आर्थिक संकट का बोझ हम पर डालने, हमारी छँटनी करने, तालाबन्दी करने, महँगाई बढ़ाने की योजना बनाते हैं तो उसका असर हमें सीधे अपने गली-मुहल्लों में, राशन की दुकान पर, और बच्चे के स्कूल की बढ़ती फ़ीसों में दिखलायी पड़ेगा। हमें इन लुटेरों की सौदेबाज़ियों और साज़िशों पर निगाह रखनी चाहिए। ये लुटेरे दुनिया के पैमाने पर इकट्ठा होकर हमें लूटने की अपनी रणनीति बनाते हैं। ऐसे में, क्या लूटे जाने की इनकी रणनीति की हम उपेक्षा कर सकते हैं? क़तई नहीं! इसलिए मज़दूरों को देश और दुनिया के पैमाने की राजनीति में दिलचस्पी लेनी चाहिए, उसे समझना चाहिए और उसके बरक्स मज़दूर वर्ग की रणनीति के बारे में भी सोचना चाहिए और वक़्तन-ज़रूरतन उसे बदलना चाहिए। और यही कारण है कि हमें पिछले महीने जी20 शिखर सम्मेलन में दुनिया की 20 प्रमुख पूँजीवादी आर्थिक शक्तियों के प्रधानों की कारगुज़ारियों को समझने की ज़रूरत है।

ब्रिस्बेन जी20 शिखर सम्मेलन में बढ़ते साम्राज्यवादी संकट पर लुटेरों की बेअसर मगज़पच्ची

जी20 में ओबामा, एंजेला मर्केल, डेविड कैमरून, टोनी एबट, स्टीफ़न हार्पर से लेकर नरेन्द्र मोदी, ज़ी जिनपिंग, पुतिन, दिल्मा रूसफ़ जैसे साम्राज्यवादी दिग्गज इकट्ठा हुए। जैसाकि उम्मीद की जा सकती थी, उनके एजेण्डे पर सबसे प्रमुख था मौजूदा वैश्विक आर्थिक संकट से कराह रहे साम्राज्यवाद को राहत का कुछ इन्तज़ाम करना। ग़ौरतलब है कि विश्व पूँजीवाद 1970 के दशक से ही लगातार मन्द मन्दी में पड़ा हुआ था और 2007 से इस मन्द मन्दी ने एक महामन्दी का रूप ले लिया है। यह मन्दी 1930 की मन्दी से ज़्यादा गहरी और ढाँचागत साबित हो रही है और तमाम कोशिशों के बावजूद जाने का नाम नहीं ले रही है। **आख़िर इस मन्दी के पीछे क्या कारण हैं?**

यह साम्राज्यवादी मन्दी आख़िर है क्या?

इस मन्दी के पीछे कारण है निजी मुनाफ़े पर टिकी हुई समूची पूँजीवादी व्यवस्था। यह एक ओर मज़दूरों को निचोड़-निचोड़कर सामानों और सेवाओं का अम्बार लगाती जाती है, तो वहीं दूसरी ओर यह आबादी के सबसे बड़े हिस्से, यानी कि मेहनतकश वर्ग को रोज़-ब-रोज़ ज़्यादा ग़रीब बनाती जाती है। नतीजा यह होता है कि एक तरफ़ बाज़ार मालों से पट जाते हैं और दूसरी तरफ़ उन्हें ख़रीदने के लिए पर्याप्त ख़रीदार नहीं होते। यही पूँजीवादी संकट का मूल है : **"अतिउत्पादन"**। यह वास्तव में अतिउत्पादन नहीं होता, बल्कि सिर्फ़ इसलिए अतिउत्पादन होता है क्योंकि वस्तुओं और ज़रूरतमन्द लोगों के बीच निजी मुनाफ़े की दीवार खड़ी होती है। वरना उत्पादन की कोई भी मात्रा अतिउत्पादन नहीं हो सकती, यदि समाज बराबरी और न्याय पर आधारित हो। लेकिन एक पूँजीवादी समाज में उत्पादन की कोई भी मात्रा "अतिउत्पादन" हो सकती है। जब पूँजीवादी व्यवस्था 1850 के दशक से लेकर 1960 के दशक के अन्त तक कई बार अतिउत्पादन के संकट का शिकार हुई तो फिर इसने इस मन्दी से निपटने के लिए एक नायाब तरीक़ा निकाला : वित्त पूँजी के ज़रिये उपभोक्ताओं को सूद पर क़र्ज़ देना और उन्हें सामान ख़रीदने के लिए प्रोत्साहित करना। 1960 के दशक के बाद क़र्ज़ देकर ख़रीदारी करवाने की सोच पूरी दुनिया की वित्तीय पूँजी के सरदारों द्वारा लागू की जाने लगी। उन्हें उम्मीद थी कि इससे अतिउत्पादन का संकट भी दूर होगा और सूद के ज़रिये क़र्ज़ पर कमाई भी होगी। लेकिन एक समय ऐसा आया जब कि क़र्ज़ का सूद देने लायक पैसे भी बहुसंख्यक जनता के पास नहीं बचे। एक तरफ़ क़र्ज़ देने के लिए विशालकाय पूँजी के अम्बार इकट्ठा हो गये, तो वहीं दूसरी ओर एक विशालकाय दरिद्र आबादी का निर्माण हो गया। इसके बाद, वित्तीय पूँजीपतियों ने ग़रीब से ग़रीब आदमी को भी बेहद ज़्यादा सूद पर क़र्ज़ देने की रणनीति अपनायी ताकि उसकी पूँजी बाज़ार में घूमती रहे, घर न बैठे। क्योंकि जब पूँजी बाज़ार में घूमती नहीं और पहले से ज़्यादा पूँजी नहीं पैदा करती तो फिर वह ख़त्म होती है। **यानी कि पूँजी का गुब्बारा फूलते जाने (और अन्ततः फट जाने) या फट जाने के लिए अभिशप्त होता है!** 2007 में अमेरिका में यही हुआ। ढेर सारे ऐसे लोगों को अमेरिकी बैंकों ने कार व घर आदि घरीदने के लिए क़र्ज़ दिया जोकि क़र्ज़ की पहली किश्त चुकाने की स्थिति में भी नहीं थे। नतीजतन, क़र्ज़ लेने वाली बड़ी आबादी क़र्ज़ का ब्याज़ तक नहीं दे पाये और डिफ़ाल्ट कर गये। अमेरिकी बैंकों ने ऐसे असफल हो चुके क़र्ज़ों की लेनदारी का अधिकार दुनिया के अन्य बैंकों को भी बेच रखा था। लिहाज़ा हुआ ये कि जब अमेरिकी जनता के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से ने क़र्ज़ का ब्याज़ तक चुका पाने में असमर्थता घोषित कर दी, तो बैंकों का पैसा कारों और घरों में फँस गया। ऐसे में, बैंकों के पास अपने खातेदारों को देने के लिए पैसे नहीं बचे; यहाँ तक कि अपने कर्मचारियों को देने के लिए भी पैसे नहीं बचे। नतीजतन, दुनिया के सबसे बड़े बैंक दीवालिया होकर औंधे मुँह गिरने लगे। इस तरह से वित्तीय पूँजी के मुनाफ़े के लालच और सट्टेबाज़ी के चलते 2007 में वैश्विक आर्थिक संकट की शुरुआत हुई। इसके बाद, दुनियाभर की सरकारों ने हम मज़दूरों की मज़दूरी घटाकर, हमारे लिए चलायी जाने वाली कल्याणकारी योजनाओं में कटौती करके, हमारे स्कूलों को बन्द करके और हमारी खानों-खदानों को पूँजीपतियों को बेचकर इन लालची बैंकों को अरबों डॉलर और रुपयों के 'पैकेज' दिये। इन बैंकों ने इन पैकेजों का इस्तेमाल भी जुआ खेलने, सट्टेबाज़ी करने और नक़ली तेज़ी के बुलबुले फुलाने में किया। परिणामतः संकट और बढ़ता गया। हर बार दुनियाभर की सरकारों ने इस संकट का बोझ मज़दूर वर्ग पर डाला। कैसे? छँटनी और तालाबन्दी करके, श्रम अधिकार छीनकर, पूँजीपतियों को कर से छुटकारा देकर और हमें करों से लादकर, महँगाई बढ़ाकर! अभी भी यही प्रक्रिया जारी है।

जी20 सम्मेलन में इस साम्राज्यवादी मन्दी का साम्राज्यवादियों ने क्या "समाधान" निकाला?

हालिया जी20 शिखर सम्मेलन में जब विश्व पूँजीवाद के 20 मुख्य नेता एकत्र हुए तो भी विश्व पूँजीवाद भयंकर संकट का शिकार है। यूरोपीय संघ की अर्थव्यवस्था 2008 से लगातार चौथी बार मन्दी का शिकार है; अमेरिकी अर्थव्यवस्था सुधार के तमाम दावों के बावजूद मन्दी से उबर नहीं पा रही है, जापान तो पिछले ढाई दशक से मन्दी से ठीक से कभी उबर ही नहीं पाया है। वहीं दूसरी ओर दुनिया की उभरती अर्थव्यवस्थाएँ जैसेकि चीन, भारत और ब्राज़ील भी संकटग्रस्ट हैं। एक ऐसे समय में जी20 के नेताओं ने अपने साझा बयान में यह दावा किया कि वे 2018 तक जी20 देशों के कुल उत्पादन को 2.1 प्रतिशत तक बढ़ायेंगे! साथ ही वे वैश्विक अर्थव्यवस्था में 2 ट्रिलियन (खरब) डॉलर का इज़ाफ़ा करेंगे! इसके अलावा, उन्होंने लाखों रोज़गार पैदा करने का भी दावा किया! लेकिन जब उन्होंने बताया कि ऐसा वे कैसे करेंगे, वैसे ही यह साफ़ हो गया कि एक बार भी बढ़ते हुए वैश्विक संकट का बोझ हम मज़दूरों पर डाला जायेगा। उनका दावा है कि संकट को दूर करने के लिए 'संरचनागत सुधारों' **की ज़रूरत है। संरचनागत सुधारों का क्या अर्थ है?** संरचनागत सुधारों का अर्थ यह है कि अब हमें श्रम क़ानूनों के तहत औपचारिक तौर पर भी जितने अधिकार मिलते थे वे एक-एक करके छीन लिये जायेंगे, क्योंकि जहाँ कहीं भी हम संगठित होकर लड़ते हैं वहाँ-वहाँ पूँजीपतियों को ये अधिकार देने पड़ जाते थे जो कि उनके मुनाफ़े के लिए और प्रतिस्पर्द्धा में टिके रहने के लिए घातक सिद्ध होता था। मोदी सरकार ने यह काम शुरू भी कर दिया है। दूसरा अर्थ है पूँजीपतियों को श्रम क़ानूनों के अतिरिक्त भी अन्य सभी क़ानूनी विनियमनों की बाधाओं से मुक्त करना। मिसाल के तौर पर, पहले मालिकों को कारख़ाने लगाने के लिए कई प्रकार के वायदे करने पड़ते थे, जैसेकि कारख़ाने के भीतर सुरक्षा के इन्तज़ाम रखने, पर्यावरण के लिए 'क्लियरेंस' लेना, कर अदायगी करना, कारख़ाना बन्द करने से पहले सरकारी इजाज़त लेना, आदि। लेकिन अब 'धन्धा करने को आसान बनाने और धन्धा बन्द करने को भी आसान बनाने' के लिए नरेन्द्र मोदी ने (जिनकी रगों में व्यापार का ख़ून दौड़ रहा है!) इन सारी बाधाओं को दूर करना शुरू कर दिया है। तीसरा अर्थ यह है कि पूँजीपतियों को कारख़ाना, शॉपिंग मॉल, सिनेमा हॉल या कोई भी धन्धा लगाने के लिए लगभग मुफ़्त की ज़मीन, मुफ़्त का पानी, मुफ़्त की बिजली, और 0 प्रतिशत ब्याज़ दर पर क़र्ज़ और आने वाले कई वर्षों तक करों से छूट की व्यवस्था करना। 'संरचनागत सुधारों' का चौथा अर्थ है देश के ऊपर के 20 प्रतिशत अमीर वर्गों पर से प्रत्यक्ष कर का बोझ धीरे-धीरे घटाते जाना (जोकि पहले से ही काफ़ी कम था!) ताकि ये वर्ग अधिक से अधिक ख़रीदारी करें और ख़रीदारी कर-करके पूँजीवाद के मवाद फेंकते फोड़ों पर नोटों की पट्टी लगा दें। वहीं दूसरी ओर, देश की 80 फ़ीसदी आबादी पर अप्रत्यक्ष करों व अन्य शुल्कों का बोझ लगातार बढ़ाते जाना, जिससे कि महँगाई लगातार बढ़ती जा रही है। और 'संरचनागत सुधारों' का पाँचवाँ अर्थ है सरकार द्वारा "ख़र्च कम करने" के नाम पर अपनी सारी ज़िम्मेदारियों से पीछे हटते जाना! पूँजीपतियों के फ़ायदों के लिए तो सरकार अपने ख़र्च को लगातार बढ़ा रही है, लेकिन जनता के स्कूल, अस्पताल, डिस्पेंसरी, राशन, बिजली, पानी प्रदान करने के ख़र्च उसे खल रहे हैं और वह उसे लगातार घटाने की बात कर रही है। सवाल यह है कि सरकार जनता को ये मूलभूत अधिकार नहीं देती तो आख़िर ऐसी सरकार को बने रहने का क्या हक़ है? अगर कोई व्यवस्था जनता को ये जीवन की बुनियादी ज़रूरतें नहीं देती तो उसे बने रहने का क्या अधिकार है? लेकिन जी20 के नेताओं के 'संरचनागत सुधार' का यही अर्थ है – जनता के मुँह से आख़िरी निवाला छीनकर भी पूँजीपतियों की तोंदों को चमकीला बनाये रखना! वैश्विक संकट से निकलने का यही रास्ता सोचा है इन लुटेरों के सरदारों ने : जनता के तन से सूत का आख़िरी तिनका भी खींचकर पूँजीपतियों को गहराते संकट के भँवर में डूबने से बचाओ! लेकिन हम जानते हैं कि 'डूबते को तिनके का सहारा' केवल मुहावरे में मिलता है, असलियत में नहीं!

पूँजी की आर्थिक तानाशाही = पूँजी की राजनीतिक तानाशाही

अपने हर ऐसे क़दम के साथ और अपनी सट्टेबाज़ी द्वारा पैदा किये गये संकट का बोझ मेहनतकश वर्ग पर डालने की हर साज़िश के साथ विश्व पूँजीवाद दुनिया के तमाम कोनों में मज़दूरों और आम घरों से आने वाले छात्रों-युवाओं के आन्दोलनों और विद्रोहों को न्यौता दे रहा है। उसके पास और कोई रास्ता बचा भी नहीं है। यही कारण है कि दुनियाभर में पूँजीपतियों ने इफ़रात पैसा ख़र्च करके फासीवादियों, मज़दूरों के धुर विरोधी दक्षिणपन्थियों और तानाशाहों को सत्ता में बिठाना शुरू कर दिया है। चाहे ऑस्ट्रेलिया हो या भारत, यूनान हो या स्पेन, फ़्रांस हो या ब्रिटेन : हर जगह पूँजीपतियों ने ऐसे तानाशाहों को सत्ता में बिठा दिया है या बिठाने की मुहिम पुरज़ोर तरीक़े से चला रखी है जो कि जनता के उबलते गुस्से को कुचलने के लिए दमन की मशीनरी को चाक-चौबन्द कर रहे हैं। मोदी के सत्ता में आते ही यह काम संघी गुण्डों को खुला हाथ देकर किया गया है। देश के तमाम इलाक़ों में अल्पसंख्यकों पर हमलों में मोदी के सत्ता में आने के बाद ज़बरदस्त बढ़ोत्तरी हुई है। एक तरफ़ संघी गुण्डे मज़दूर वर्ग पर हमले बढ़ा रहे हैं, वहीं वे मज़दूर वर्ग को धर्म, जाति या नस्ल के आधार पर बाँट भी रहे हैं। हमारा ध्यान उनकी इस साज़िश पर न जाये इसके लिए पाकिस्तान के साथ युद्धोन्माद को भड़काया जा रहा है। यह बात दीगर है कि पाकिस्तान की संकटग्रस्त नवाज़ शरीफ़ सरकार को भी इस अन्धराष्ट्रवाद और युद्धोन्माद की उतनी ही ज़रूरत है, जितनी की मज़दूर वर्ग को पूरी तरह कुचल देने की तैयारी कर रहे साम्प्रदायिक फासीवादी मोदी को है। **लुब्बेलुबाब यह कि संकट के दौर में जहाँ दुनियाभर का पूँजीपति वर्ग आर्थिक कट्टरपन्थ के छोर तक पहुँच रहा है, तो वहीं यह आर्थिक कट्टरपन्थ उसे राजनीतिक कट्टरपन्थी बनने को भी बाध्य कर रहा है।** दूसरे शब्दों में, अगर आज भारत में मोदी, ऑस्ट्रेलिया में एबट, ब्रिटेन में कैमरून जैसे धुर दक्षिणपन्थी और मज़दूर वर्ग के दुश्मनों को पूँजीपति वर्ग ने सत्ता में पहुँचाया है तो इसका कारण यह है कि आर्थिक संकट के दौर में तानाशाही और फासीवाद पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत है। हम मज़दूरों को पूँजी की यह पूरी जंजालनुमा रणनीति समझनी होगी। अपने औद्योगिक क्षेत्रों में, अपने मुहल्लों में और अपने देश में भी, हम अपने हक़ों और हितों की लड़ाई तभी लड़ सकते हैं।

जी20 में साम्राज्यवादियों के बीच ज़बरदस्त कुत्ताघसीटी साम्राज्यवादियों के बढ़ते आपसी अन्तरविरोधों की निशानी है

जी20 सम्मेलन में मज़दूर वर्ग के बदन से ख़ून का आख़िरी कतरा भी निचोड़ लेने की रणनीति बनाने में जहाँ साम्राज्यवादियों के बीच सहमति नज़र आयी, वहीं दुनियाभर में सस्ते श्रम और प्राकृतिक संसाधनों की लूट में हिस्सेदारी को लेकर वे आपस में वैसे ही लड़-झगड़ रहे थे, जैसेकि म्युनिसिपैलिटी के कूड़ेदान पर कुत्ते आपस में दाँत निकाल-निकालकर

पेज 10 पर जारी)

साम्राज्यवादी संकट के समय में सरमायेदारी के सरदारों की साज़िशें और सौदेबाज़ियाँ और मज़दूर वर्ग के लिए सबक

पेज 9 से आगे)

झगड़ते हैं! जी हाँ! हम ज़रा भी बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बता रहे। साम्राज्यवादी कुत्तों का सबसे शक्तिशाली समूह था अमेरिका की अगुवाई वाला समूह। अमेरिकी साम्राज्यवादी गिरोह के जितने सदस्य थे, वे इस सम्मेलन में सीधे तौर पर रूस और घुमा-फिराकर चीन के हितों पर चोट करने में लगे हुए थे। हुआ यह है कि पिछले दो दशकों में चीन और रूस दुनियाभर में अमेरिकी साम्राज्यवादी दादागीरी के लिए ख़तरा बनकर उभरे हैं। अपने देश में मौजूद सस्ते श्रम और सस्ते संसाधनों के बूते रूसी और चीनी पूँजी अमेरिकी-ब्रिटिश वर्चस्व को चुनौती दे रही है। साथ ही, रूस व चीन की धुरी ने अपने इर्द-गिर्द उभरती वैश्विक ताक़तों का एक ताना-बाना खड़ा किया है, जिसे **'ब्रिक्स'** (ब्राज़ील, रूस, भारत, चीन, दक्षिण अफ़्रीका) कहा जा रहा है। 'ब्रिक्स' के देश पूँजी का अपना भण्डार बना रहे हैं, एक-दूसरे से डॉलर के साथ ही अन्य मुद्राओं में भी व्यापार कर रहे हैं, और साथ ही इनके पास प्राकृतिक संसाधन बड़ी मात्रा में मौजूद हैं। ये ऐसे देश नहीं हैं जिन पर अमेरिकी साम्राज्यवादी सीधे सैन्य हमला कर सकते हों। जब उनकी हालत अफगानिस्तान और इराक़ तक में ख़राब हो गयी तो फिर रूस या चीन से युद्ध का ख़याल भी उन्हें डर से कँपा देता होगा। लेकिन साम्राज्यवाद मुनाफ़े की हवस में कहाँ तक जा सकता है, इसके बारे में अन्तिम तौर पर भी कुछ नहीं कहा जा सकता है।

साम्राज्यवादियों के बीच कुत्ताघसीटी के प्रमुख मुद्दे क्या थे?

इस जी20 सम्मेलन में साम्राज्यवादियों की कुत्ताघसीटी के दो प्रमुख केन्द्र विवाद का मुद्दा बने रहे– एक तो यूक्रेन है, जोकि पहले सोवियत संघ का ही हिस्सा था, लेकिन सोवियत संघ के विघटन के बाद रूस से अलग हो गया था। अलग होने के बाद भी यूक्रेन समेत सोवियत संघ के अन्य घटक देशों पर रूस का ही आर्थिक व राजनीतिक प्रभाव था। अब अमेरिका व ब्रिटेन इस प्रभाव क्षेत्र को ख़त्म कर अपना प्रभाव क्षेत्र बनाना चाहते हैं। लेकिन रूस ऐसा होने नहीं दे रहा है और यह अमेरिका, ब्रिटेन और साथ ही यूरोपीय संघ के प्रमुख देशों जर्मनी व फ़्रांस के लिए काफ़ी चिड़चिड़ा देने वाला अनुभव है। ऐसे में, अमेरिकी गिरोह ने रूस पर काफ़ी धौंस-पट्टी जमाने की कोशिश की, लेकिन वे सफल नहीं हो पाये। उल्टे रूस ने ही अपने राष्ट्रपति के साथ एक विशाल सैन्य बेड़ा ऑस्ट्रेलिया की सीमा पर पड़ने वाले अन्तरराष्ट्रीय समुद्र में भेजकर अपनी हेकड़ी दिखला दी। पुतिन के आने से पहले कनाडा के राष्ट्रपति, ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमन्त्री और अमेरिका के राष्ट्रपति ने पुतिन के ख़िलाफ़ काफ़ी बयानबाज़ी की, लेकिन बाद में जी20 सम्मेलन में पुतिन की मौजूदगी में उनके मिजाज़ बदले हुए नज़र आये। यहाँ तक कि पुतिन ने ख़ुद कहा कि ऑस्ट्रेलिया में उनके लिए बेहद शिष्ट और मित्रतापूर्ण माहौल था। इसके बाद पुतिन ने पूरे सम्मेलन तक मौजूद रहना भी ज़रूरी नहीं समझा और बीच में ही चले गये। यह बाक़ी जी20 में वर्चस्व रखने वाली अमेरिकी धुरी के लिए यह सन्देश था कि 'मैं तुम्हें कुछ नहीं समझता'!

रूस ने सीरिया के मुद्दे पर भी अमेरिका को सीधा सैन्य हस्तक्षेप करने से रोक रखा है। अब इस्लामिक स्टेट के कट्टरपन्थियों को कुचलने के नाम पर अमेरिका प्रत्यक्ष सैन्य हस्तक्षेप करने की फिराक में है, लेकिन यह काम इतना आसान भी नहीं है। इसका कारण यह है कि सीरिया की जनविरोधी असद सरकार और ईरान रूस-चीन धुरी के नज़दीक हैं और अमेरिका इस गठजोड़ पर हमला करने का कोई अवसर गँवाना नहीं चाहता। लेकिन पुतिन रूस के लिए एक मँझा हुआ पूँजीवादी-साम्राज्यवादी रणनीतिकार साबित हो रहा है और अमेरिका की हर चाल को बेअसर कर रहा है। मध्य-पूर्व में रूस बेहद चुप्पी के साथ और सधे हुए क़दमों से अपने असर को बढ़ा रहा है। यह लेख लिखे जाने के समय ही यह ख़बर आयी कि इस्लामिक स्टेट के उग्रवादियों के ख़िलाफ़ ईरान ने हवाई हमले किये हैं। ये हमले वास्तव में ईरान द्वारा अमेरिकी हमलों की सहायता नहीं हैं, बल्कि सीरिया और इराक़ पर ईरानी प्रभाव को बढ़ाने की कवायद थे। मध्य-पूर्व में चीन भी आर्थिक रास्तों से तेज़ी से घुस रहा है। **साफ़ तौर पर देखा जा सकता है कि इस पूरे क्षेत्र में भी अमेरिकी वर्चस्व आने वाले समय में बिना प्रतिद्वन्द्वियों के नहीं होगा।**

उसी प्रकार चीन ने अमेरिकी धुरी की परवाह न करते हुए एशिया-प्रशान्त क्षेत्र के देशों के लिए एक अलग अवसंरचना निवेश बैंक (यानी, अर्थव्यवस्था के बुनियादी ढाँचे के निर्माण में निवेश के लिए बैंक) बनाने का प्रस्ताव रखा, जिस पर अमेरिकी धुरी ने काफ़ी नाक-भौं सिकोड़ा। इसका कारण यह था कि अगर चीन के नेतृत्व में ऐसा बैंक एशिया प्रशान्त क्षेत्र के देशों को क़र्ज़ देने लगता है, तो फिर अमेरिकी वर्चस्व वाले अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक का वित्तीय वर्चस्व निश्चित तौर कमज़ोर पड़ेगा। इसका कारण यह भी है कि आने वाले समय में विश्वभर में होने वाले निवेश का सबसे बड़ा हिस्सा एशिया प्रशान्त क्षेत्र में ही होने वाला है, क्योंकि वहीं पर विश्वभर के पूँजीपतियों को सस्ते संसाधन और सस्ती श्रम शक्ति मिलने वाली है। ऐसे में, अमेरिकी धुरी के लिए यह ज़रूरी था कि ऐसे बैंक बनने के प्रस्ताव पर वह ठण्डा रुख़ दिखलाये। चीन और रूस को परिधि पर धकेलने के तमाम प्रयासों के बावजूद रूस-चीन धुरी ने अमेरिकी पार्टनरों में ही तोड़-फोड़ मचा दी। मिसाल के तौर पर, चीन ने ऑस्ट्रेलिया के साथ मुक्त व्यापार समझौता किया है। ऑस्ट्रेलिया ने नागरिक उपयोग के लिए भारत और चीन को यूरेनियम बेचने को स्वीकृति दी है और साथ ही रूस तक को यूरेनियम बेचने से उसने कोई इंकार नहीं किया है। उसी प्रकार ऑस्ट्रेलिया ने भारत के पूँजीपति घराने अदानी को अपने देश में कोयले की खानों का ठेका दिया है। इसलिए अगर कुल मिलाकर देखें तो अमेरिकी धुरी उभरती हुई रूस-चीन धुरी के विरुद्ध कोई विशेष सफलता हासिल नहीं कर पायी। जहाँ तक यूरोपीय संघ का प्रश्न है, उसकी हालत धोबी के कुत्ते के जैसी हो गयी है। रूस-चीन धुरी के साथ वह सीधा बैर नहीं मोल लेना चाहती है, क्योंकि रूस की प्राकृतिक गैस और पेट्रोलियम के भण्डार से उसे काफ़ी कुछ मिलता है और उसकी कई भावी उम्मीदें भी हैं। इसके अलावा, चीन की अर्थव्यवस्था के साथ न सिर्फ़ अमेरिकी अर्थव्यवस्था नाभिनालबद्ध हो चुकी है, बल्कि स्वयं यूरोपीय संघ की अर्थव्यवस्था भी चीनी आयात पर काफ़ी हद तक निर्भर होने लगी है।। लेकिन साथ ही वह तमाम ऐतिहासिक कारणों, डॉलर पर निर्भरता और अमेरिका पर सैन्य निर्भरता के कारण यूरोपीय संघ अमेरिका के साथ रहने को भी मजबूर है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि यह गठजोड़ स्वाभाविक नहीं है और आने वाले समय में टूट भी सकता है। **कुल मिलाकर, आराम से कहा जा सकता है कि विश्व के साम्राज्यवादी समीकरणों में बदलाव आने की प्रक्रिया धीमी गति से ही सही, लेकिन जारी है।** एकछत्र अमेरिकी वर्चस्व तो पहले ही टूट चुका है, लेकिन अभी भी अमेरिका ही सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति है। लेकिन उसकी शक्ति ढलान पर है, यह भी सच है। पर्यावरण के प्रश्न पर भी ये बदलते समीकरण नज़र आ रहे थे। साम्राज्यवादी देशों के बीच खींचतान नज़र आयी। पर्यावरण को बचाने और उसमें हो रहे विनाशकारी परिवर्तनों के अनुसार मानवता को अनुकूलित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र के एक फ़ण्ड के निर्माण के प्रस्ताव को साम्राज्यवादी देशों ने तवज्जो ही नहीं दी। ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमन्त्री टोनी एबट (जोकि सबसे मूर्ख राष्ट्र-प्रमुखों की प्रतिस्पर्द्धा में जॉर्ज बुश जूनियर और नरेन्द्र मोदी जैसे दिग्गजों को कड़ी टक्कर दे रहे हैं!) ने यहाँ तक कह दिया कि यह प्रस्ताव 'पर्यावरणवाद के मुखौटे में समाजवाद' है! समाजवाद के प्रति डर साम्राज्यवादियों में इस कदर समाया हुआ है (समाजवाद की मृत्यु के तमाम दावों के बावजूद) कि उनके मुनाफ़े की रफ़्तार को धीमा करने वाला कोई सुधारवादी प्रस्ताव भी उन्हें 'समाजवादी' प्रतीत होता है! आगे बढ़ने से पहले यह भी स्पष्ट कर दें कि अमेरिकी साम्राज्यवादी वर्चस्व को चुनौती देने वाली रूस-चीन धुरी भी स्वयं साम्राज्यवादियों का ही गिरोह है और अपने-अपने देशों के भीतर मज़दूरों को लूटने और कुचलने में ये देश कहीं भी अमेरिकी धुरी के देशों से पीछे नहीं हैं। साथ ही, जिन देशों में इनका असर ज़्यादा है, वहाँ भी इन्होंने जनता को दबाने में कोई रू-रियायत नहीं बरती है। वास्तव में, इन धुरियों के बीच का झगड़ा साम्राज्यवादी डाकुओं के बीच का झगड़ा है। इनमें से किसी एक के जीतने पर या हावी होने पर हमें ताली बजाने की कोई ज़रूरत नहीं है। सवाल यह है कि इनके बीच के अन्तरविरोधों के गहराने और इनके बीच के समीकरणों के बदलने का हमारे लिए क्या अर्थ है? क्या इनके मद्देनज़र हमें भी अपनी तैयारियों के लिए कुछ नतीजे निकालने चाहिए?

साम्राज्यवादी अन्तरविरोध तीखे होने और साम्राज्यवाद के वैश्विक समीकरणों के बदलने के मज़दूर वर्ग के लिए निहितार्थ

साम्राज्यवाद के बदलते आपसी समीकरणों का हम मज़दूरों के लिए क्या कोई अर्थ है? बिल्कुल है! इतिहास गवाह है कि जब भी साम्राज्यवादियों के बीच लूट में हिस्सेदारी को लेकर झगड़ा बढ़ा है, जब भी उनके बीच के अन्तरविरोध गहराये हैं, जब भी साम्राज्यवाद के वैश्विक समीकरणों में कोई बड़ा बदलाव आया है, तो वह शान्तिपूर्ण तरीक़े से नहीं आया है। साम्राज्यवाद के संकटों ने ही पहले और दूसरे विश्वयुद्ध को जन्म दिया। नया लुटेरा गिरोह के सरदार की उपाधि पुराने सरदार से लड़कर ही जीतता है, यह उसे कभी पुराना सरदार तोहफ़े में नहीं देता है। साम्राज्यवादी डाकुओं पर भी यह बात पूरी तरह से लागू होती है। **इसीलिए सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक लेनिन ने कहा था कि साम्राज्यवाद का अर्थ है युद्ध।** यह सच है कि आज तीसरे विश्वयुद्ध की गुंजाइश कम है। इसका पहला कारण तो यह है कि उपनिवेशवाद का ज़माना चला गया और उस रूप में उपनिवेशों की फिर से बँटवारे की लड़ाई पूरी दुनिया के पैमाने पर नहीं लड़ी जा सकती है। दूसरा कारण यह है कि आणविक हथियारों का जखीरा आज दुनिया के कई साम्राज्वादी देशों के पास है। हर धुरी के पास अच्छी-ख़ासी तादाद में ऐसे हथियार मौजूद हैं। ऐसे में, हालाँकि साम्राज्यवादी पागलपन अपवादस्वरूप स्थितियों में और क्रान्तिकारी शक्तियों की अनुपस्थिति में किसी भी हद तक जा सकता है और आणविक युद्ध के ज़रिये मानवता का विनाश भी कर सकता है, लेकिन इसकी गुंजाइश बेहद कम है। यह भी एक कारण है कि आज पहले दो विश्वयुद्धों की तरह कोई तीसरा विश्वयुद्ध नहीं होगा। तीसरा कारण यह है कि साम्राज्यवादियों ने भी इतिहास से सबक़ लिया है कि हर ऐसा व्यापक विश्वयुद्ध कई देशों में क्रान्ति की परिस्थितियाँ तैयार करता है। पहले विश्वयुद्ध ने रूस में समाजवादी क्रान्ति की परिस्थितियाँ तैयार कीं, तो दूसरे विश्वयुद्ध में फासीवादी धुरी की हार ने एक ओर चीन को तो दूसरी ओर पूरे पूर्वी यूरोप को लाल कर दिया। आज साम्राज्यवादी ऐसे किसी टकराव से बचना चाहते हैं जोकि पूरे विश्व के पैमाने पर हो और विश्व के कई देशों में समाजवादी क्रान्ति की ज़मीन को तैयार करे। **इन तीन कारणों से आज तीसरे विश्वयुद्ध की गुंजाइश बेहद कम है।**

लेकिन साम्राज्यवाद का अर्थ आज भी युद्ध है। अब ये युद्ध विश्वयुद्ध का रूप न भी लें, तो साम्राज्यवादी युद्ध के कुछ वैश्विक मंच निर्मित होंगे। मिसाल के तौर पर, अभी ऐसा एक मंच मध्य-पूर्व और यूक्रेन बने हुए हैं जहाँ पर साम्राज्यवादी धुरियों के बीच के अन्तरविरोध सान्द्र होकर इकट्ठे हो गये हैं। साथ ही सैन्य युद्ध न होने के बावजूद, दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी यूरोप के पिछड़े पूँजीवादी देश भी साम्राज्यवादियों के बीच के अन्तरविरोधों के एक जगह एकत्र होने की निशानी हैं। यूरोप की ज़मीन पर साम्राज्यवादी युद्ध साम्राज्यवाद के लिए बहुत ज़्यादा ख़तरनाक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि वहाँ की जनता की राजनीतिक चेतना का स्तर अच्छा-ख़ासा विकसित है और उसके क्रान्तिकारी राजनीतिकरण की ओर तेज़ी से बढ़ने की सम्भावना काफ़ी ज़्यादा है। इसलिए वहाँ खुले सैन्य युद्ध की बजाय साम्राज्यवादियों ने एक अन्दरूनी प्रच्छन्न युद्ध छेड़ रखा है। यूनान, स्पेन, पुर्तगाल और इटली में ये साम्राज्यवादी लगातार फासीवादी ताक़तों को वित्तपोषण व अन्य सहायता दे रहे हैं, ताकि जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों के ख़िलाफ़ एक अघोषित युद्ध चलाया जा सके। लेकिन मध्य-पूर्व में हालात बेहद भयंकर हैं और खुले युद्ध जैसे हैं। यही कारण है कि मिस्र और ट्यूनीशिया में, सीरिया और जॉर्डन में रह-रहकर जनविद्रोह हो रहे हैं। यही कारण है कि सीरिया के कुर्द मज़दूर न सिर्फ़ धार्मिक कट्टरपन्थियों से लोहा ले रहे हैं, बल्कि साम्राज्यवाद से भी लोहा ले रहे हैं। ये जनविद्रोह दिखला रहे हैं कि साम्राज्यवादी पतली रस्सी पर चल रहे हैं। ये जनविद्रोह दिखला रहे हैं कि युद्ध हमेशा की तरह क्रान्ति की सम्भावना से सम्पन्न परिस्थितियों को जन्म देते हैं। लेकिन साथ ही, इन जनविद्रोहों के कुचल दिये जाने ने यह भी सिद्ध किया है कि जनविद्रोह स्वयं क्रान्ति में **तब्दील नहीं होते। क्रान्ति के लिए संगठन और विचारधारा की ज़रूरत होती है। यानी मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रान्ति के विज्ञान से लैस मज़दूर वर्ग की एक हिरावल पार्टी।**

(पेज 12 पर जारी)

1984 के ख़ूनी वर्ष के 30 साल

अब भी जारी हैं योजनाबद्ध साम्प्रदायिक दंगे और औद्योगिक हत्याएँ

1984 के ख़ूनी वर्ष को 30 साल बीत चुके हैं। उस वर्ष दिल्ली के सिक्ख जनसंहार और भोपाल गैस काण्ड के रूप में भारतीय समाज पर लगे दो ज़ख़्म आज तक रिस रहे हैं। नवम्बर 1984 में, इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद सोची-समझी साज़िश के अन्तर्गत दिल्ली की सड़कों पर सरेआम हज़ारों सिक्खों को बर्बर ढंग से क़त्ल किया गया, औरतों का बलात्कार किया गया, बच्चों समेत अनेक लोगों को यातनाएँ देकर जलाया गया और भारी तोड़-फोड़, आगज़नी और लूटमार की गयी। उसी वर्ष की 2 दिसम्बर की रात को भोपाल के यूनियन कार्बाइड कारख़ाने से 40 टन ज़हरीली गैस रिसी जिसने 7 किलोमीटर के घेरे में आने वाले इलाक़े को अपनी चपेट में ले लिया। इसमें करीब 20,000 लोग मारे गये और 6 लाख के करीब प्रभावित हुए। जो घायल हो गये, भयानक बीमारियों का शिकार हो गये और आते कई वर्षों तक यातनाओं से भरी मौत मरते रहे और कईयों की तो आने वाली पीढ़ियाँ भी अपंग और जन्मजात बीमारियों का शिकार होकर पैदा होने के लिए अभिशप्त हो गयीं।

इन दोनों क़त्लेआमों में पहली साझा बात यह थी कि दोनों के पीछे ही राजनैतिक-आर्थिक हित छिपे हुए थे जिसमें से पहले हत्याकाण्ड को साम्प्रदायिक रंगत दी गयी तो दूसरे को एक आकस्मिक औद्योगिक हादसा कह मुँह फेरने की कोशिश की गयी। दूसरी साझा बात यह कि दोनों एक या कुछ दिनों में घटे दुखदायी हादसे नहीं थे, बल्कि दोनों धारावाहिक घट रहे घटनाकर्मों के अंग थे। अपने राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिए कांग्रेस ने पंजाब को साम्प्रदायिक आग में झोंका। कई वर्ष पंजाब ने अपने सीने पर आतंकवाद, दहशतगर्दी और राजनैतिक अत्याचार का सन्ताप झेला। हज़ारों घरों के चिराग चिता की आग बनकर जले जिस पर पूँजीवादी राजनीतिज्ञों, अफ़सरशाही, नौकरशाही और मूलवादी ताक़तों ने अपनी ख़ूब रोटियाँ सेंकीं। हज़ारों नौजवानों को सरकारी दमन या साम्प्रदायिक ताक़तों ने निगल लिया और लाखों परिवारों की ज़िन्दगी बद से बदतर बना दी। पंजाब का वह दौर किसी को भूला नहीं, दिल्ली में सिक्ख जनसंहार उसी दौर की ही निरन्तरता थी। इस तरह, ख़ास तौर पर पंजाब की, आम जनता ने न सिर्फ़ 1984 का एक हत्याकाण्ड बरदाश्त किया बल्कि उन्होंने कई क़त्लेआमों की लड़ी में दहशत के अँधेरे में कई साल गुज़ारे।

इसी तरह भोपाल हत्याकाण्ड भी देश के करोड़ों मज़दूरों, मेहनतकशो की बर्बर लूट, उन को पशुओं से बुरे जीवन स्तर पर जीने के लिए मजबूर करने और उनके ख़ून के आख़िरी कतरे तक को निचोड़कर आलीशान महल बनाने की उस परिघटना का अंग था जो आज भी मौजूद है। भोपाल हत्याकाण्ड की नींव तो काफ़ी पहले तब ही रखी जा चुकी थी, जब एक अमरीकी और 8 भारतीय पूँजीपतियों के साझा वाले इस कारख़ाने को पहले तो सरकार ने पिछड़ी तकनीक होने के बावजूद लगाने की मंजूरी दी। फिर इसमें ज़हरीली गैस निश्चित मात्रा से कई गुना ज़्यादा भण्डार करके रखी जाने लगी। मुनाफ़े के भूखे इन पूँजीपतियों ने इस गैस को ठण्डा रखने के लिए ज़रूरी प्रणाली बन्द कर दी और दुर्घटना की चेतावनी देने वाला हूटर भी बन्द कर दिया। एक अख़बार ने तो एक साल पहले ही ऐसे हादसों की सम्भावना की भविष्यवाणी भी की थी। इसी का नतीजा हुआ कि रातो-रात 20,000 धड़कते मानवीय दिल ख़ामोश कर दिये गये।

दोनों क़त्लेआमों में साझा तीसरा और अहम नुक्ता बनता है क़ानून और इंसाफ के नाम पर हुआ तमाशा, जिसने भारतीय न्यायपालिका को क़दम-क़दम पर नंगा किया। दोनों क़त्लेआमों में सरकार से इंसाफ़ की आस रखना लोगों के लिए गिद्धों के घौसले में से मांस ढूँढ़ना साबित हुआ। सिक्ख हत्याकाण्ड के मुख्य दोषी सज्जन कुमार, भजनलाल बिश्नोई, जगदीश टाइटलर, हरकिशन लाल भगत जैसे कांग्रेसी नेता थे। इस हत्याकाण्ड को तब राजीव गांधी ने यह बयान देकर वाजिब ठहराया था कि "जब कोई बड़ा वृक्ष गिरता है, तो धरती तो काँपती ही है।" उसने सरेआम बेगुनाह सिक्खों के हत्याकाण्ड को वाजिब ठहराया और तब ही यह भी स्पष्ट हो गया कि राजनैतिक शह पर हुए इस हत्याकाण्ड में इन कांग्रेसी नेताओं को कोई सज़ा नहीं होने लगी। बाद में उक्त बयान देने वाला राजीव गांधी देश का प्रधानमन्त्री बना और इसी तरह भजन लाल, सज्जन कुमार, जगदीश टाइटलर, हरकिशन लाल भक्त आदि जैसे बाक़ी दोषी भी कांग्रेस पार्टी में ऊँचे पदों पर बिराजमान रहे हैं। इस हत्याकाण्ड का मुद्दा अदालत में गया तो तारीख़ पर तारीख़ का तमाशा शुरू हुआ, साल दर साल लोग इन्साफ़ की आशा में अदालतों में भटकते रहे, कुछ गवाह मुकरते रहे, कुछ लापता होते रहे और कुछ मरते रहे, और दूसरी तरफ़ कातिल खुलेआम घूमते रहे। वे बार-बार निर्दोष करार देकर बरी किये गये और पीड़ित इन्साफ़ की उम्मीद में ऊपर वाली अदालतों का दरवाज़ा खटखटाते रहे और चुनाव के मौसम को देखते हुए संसद में भी यह मुद्दा बार-बार उठता रहा। परन्तु लोगों के हाथ हर बार निराशा ही पड़ी। भारतीय न्यायपालिका का दोगलापन देखो कि इसने कांग्रेसी नेताओं को "सबूतों की कमी" की "मजबूरी" के बहाने तो निर्दोष कहकर बरी कर दिया परन्तु इसने पिछले साल ही अफ़जल गुरू को सबूतों की कमी के बावजूद "देश के लोगों के जज़्बात की सन्तुष्टि" की "मजबूरी" में फाँसी भी दे दी। मगर इसी "मजबूरी" के आधार पर सज्जन कुमार, जगदीश टाइलर समेत गुजरात दंगों के दोषी मोदी और अमित शाह जैसों को भी फाँसी देनी चाहिए।

भोपाल गैस काण्ड में भी इन्साफ़ के नाम पर यही तमाशा हुआ। जब भोपाल की सड़कें लाशों से और अस्पताल घायलों से भरे पड़े थे तो भारत सरकार यूनियन कार्बाइड के प्रमुख वारेन एण्डरसन को बेशर्मी से मान-सम्मान के साथ अमरीका भेजने में लगी हुई थी। एण्डरसन को भोपाल पहुँचते ही गिरफ़्तार कर लिया गया था, परन्तु छह घण्टों में ही उसकी न सिर्फ़ जमानत हो गयी, बल्कि सरकार के विशेष हवाई जहाज़ द्वारा उसे दिल्ली ले जाया गया जहाँ से उसे उसी दिन अमरीका भगा दिया गया। उसके बाद वह कभी अदालत में उपस्थित ही नहीं हुआ। भारतीय राजनीतिज्ञ अभी तक इसको "लोगों का गुस्सा भड़कने के डर से उठाया ज़रूरी क़दम" कहकर अपने गुनाह छुपाने की असफल कोशिश कर रहे हैं। बाद में इस मामले में भी तारीख़ों, गवाहों के मुकरने और सबूतों की कमी का चक्र शुरू हुआ। 1996 में तो भारत के पूर्व मुख्य जज जस्टिस अहमदी ने इस पूरे मामले को एक मामूली सड़क हादसे के बराबर बनाकर यूनियन कार्बाइड के ख़िलाफ़ दोषों को बेहद हल्का बना दिया था। तभी यह स्पष्ट हो गया था कि अगर दोषियों को सज़ा मिली भी तो वह अधिक से अधिक 2 साल की जमानती क़ैद ही हो सकती है। बाद में हुआ भी यही और इस हत्याकाण्ड से 26 वर्ष बाद जून 2010 में भोपाल की एक अदालत ने यूनियन कार्बाइड के 8 पूँजीपतियों को सिर्फ़ दो-दो वर्ष की सज़ा सुनाकर छोड़ दिया और उपर से दो घण्टों के भीतर ही उनकी जमानत भी हो गयी और वह हँसते हुए घर चले गये। जबकि इसका मुख्य दोषी वारेन एण्डरसन फिर कभी भारत सरकार के हाथ नहीं आया और वह इस हत्याकाण्ड के बाद 30 साल विलासिता भरी ज़िन्दगी जीने के बाद इसी वर्ष चल बसा।

भारतीय न्यायपालिका के चेहरे से लोकतन्त्र और जनवाद का मुखौटा उतारते यही दो मुक़दमे नहीं हैं। हमारे समाज का पूरा आर्थिक और राजनैतिक ढाँचा ही लूट और मुनाफ़ाखोरी पर टिका हुआ है। यहाँ सरकारें, अदालतें, क़ानून, पुलिस, फ़ौज सब पूँजीपतियों, धनाढ्यों की चाकरी और आम लोगों को लूटने और पीटने के लिए हैं। हर चीज़ की तरह यहाँ न्याय भी बिकता है। पुलिस थाने, कोर्ट-कचहरियाँ सब व्यापार की दुकानें हैं जो नौकरशाहों, अफ़सर, वकीलों और जजों के भेस में छिपे व्यापारियों और दलालों से भरी हुई हैं। आप क़ानून की देवी के तराजू में जितनी ज़्यादा दौलत डालोगे उतना ही वह आपके पक्ष में झुकेगी। इन दो मामलों के अलावा भी हज़ारों मामले इसी बात की गवाही देते हैं। बहुत से पूँजीपति और राजनीतिज्ञ बड़े-बड़े जुर्म करके भी खुले घूमते फिरते हैं, क़त्ल और बलात्कार जैसे गम्भीर अपराधों के दोषी संसद में बैठे सरकार चलाते हैं और करोड़ों लोगों की क़िस्मत का फ़ैसला करते हैं। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक़ ही केन्द्र और अलग-अलग राज्यों में करीब आधे राजनीतिज्ञ अपराधी हैं, असली संख्या तो कहीं और ज़्यादा होगी। कभी-कभार मुनाफ़े की हवस में पागल इन भेड़ियों की आपसी मुठभेड़ में ये अपने में से कुछ को नंगा करते भी हैं तो वह अपनी राजनैतिक ताक़त और पैसे के दम पर आलीशान महलों जैसी सहूलियतों वाली जेलों में कुछ समय गुज़ारने के बाद जल्दी ही बाहर आ जाते हैं। ए. राजा, कनीमोझी, लालू प्रसाद यादव, जयललिता, शिबू सोरेन, बीबी जागीर कौर, बादल जैसे इतने नाम गिनाये जा सकते हैं कि लिखने के लिए पन्ने कम पड़ जायें।

जब हम इतिहास की किसी घटना की बात कर रहे होते हैं तो हम उसके बहाने मौजूदा समय पर भी टिप्पणी कर रहे होते हैं। यहाँ इन दोनों क़त्लेआमों की बात दुहराने का कारण यह है कि यह सब अभी भी बेरोक-टोक चल रहा है। राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिए लोगों की साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काना, जाति, धर्म और क्षेत्र के नाम पर लोगों में फूट डालना अभी ख़त्म हुआ नहीं बल्कि बढ़ता जा रहा है। इसमें हिन्दू कट्टरपन्थी और फासीवादी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सबसे आगे है। इसके द्वारा 1992 में बाबरी मस्जिद गिराया जाना, 2002 में मोदी की शह पर गुजरात में मुसलमानों का हत्याकाण्ड, 2007 में उड़ीसा हत्याकाण्ड और पिछले दो वर्षों में उत्तर प्रदेश के मुज़फ़्फ़रपुर समेत कई जगहों पर दंगे किसी से छिपे नहीं हुए। मोदी के प्रधानमन्त्री बनने के बाद तो ये संघी गुण्डे और भी खूँखार बन गये हैं और अपने संघी मंसूबों को पूरा करने के लिए उन्होनें लोगों में और ज़्यादा व्यापक रूप से अपनी संस्थायों का जाल बिछाना शुरू किया हुआ है। पंजाब (जहाँ उनके पहले कभी पैर नहीं जमे) में भी वह कई स्थानों पर हथियारबन्द पैदल मार्च कर चुके हैं और शहरों, कस्बों और गाँवों में शाखाएँ चलाकर किशोर मन में अपना साम्प्रदायिक ज़हर भरने लगे हुए हैं। इनके अलावा दूसरे धर्मों, सम्प्रदाओं की कट्टरपन्थी ताक़तें भी अपनी ताक़त के मुताबिक़ लोगों को आपस में लड़ाने और बाँटने की पूरी कोशिश करने में लगी हैं। देशभर में डेरों के विवाद, गद्दियों के विवाद और अलग-अलग सम्प्रदायों के लोगों में आपसी टकराव की हर साल अनेकों ही घटनाएँ सामने आती ही रहती हैं जिनकी गिनती करना मुश्किल है।

दूसरी तरफ़ भोपाल हत्याकाण्ड की तरह देशभर के औद्योगिक मज़दूरों से लेकर हर तरह के मेहनतकश, कामगार, अर्ध-मज़दूरों तक सभी भयानक लूट और दमन का शिकार हैं। काम के स्थानों पर सुरक्षा प्रबन्धों की कमी, हादसे होना, मज़दूरों का अपाहिज होना या जान खो बैठना अभी भी आम बात है, जिनमें न तो कोई मुआवज़ा मिलता है और न ही प्रशासन में कोई सुनवाई होती है। ऊपर से काम के स्थानों पर बुरे व्यवहार, रिहाइश के घटिया स्थान (जहाँ पानी, सफ़ाई, सीवरेज, सेहत, शिक्षा जैसी बुनियादी सहूलियतें भी न के बराबर ही होती हैं) आदि इनकी ज़िन्दगी और भी कठिन बना देते हैं। सूचना तकनीक, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ समेत बड़ी कम्पनियों में अपेक्षाकृत बेहतर तनख़्वाहें पर काम कर रहे युवाओं की हालत भी कोई बहुत अलग नहीं, उनके साथ भी बुरा व्यवहार, अपमानित किये जाना, काम का ज़रूरत से अधिक बोझ, काम के घण्टे सीमित न होना, नौकरियों से निकाले जाने का डर और किसी समय भी काम पर बुलाया जाना - उनके लिए परेशानी और बेचैनी का कारण बना रहता है। मोदी सरकार ने आते ही इनकी मुश्किलों और बढ़ा दी हैं। भारतीय और विदेशी पूँजीपतियों के मुनाफ़े और हितों को ध्यान में रखते हुए श्रम क़ानूनों में बड़े स्तर पर मज़दूर विरोधी सुधार करके यह मेहनतकश आबादी को संविधान से मिलते छोटे-मोटे अधिकारों पर भी कटार चला रही है। ऐसी हालत में मेहनतकश जनता के मानवीय अधिकारों तथा जीने के अधिकारों का छीने जाना, उनकी लूट, दमन और हादसों के ख़िलाफ़ कोई क़ानूनी कार्यवाही कर सकना असम्भव होता जा रहा है।

आज यह समझने की ज़रूरत है कि '84 के क़त्लेआमों के लिए न तो अदालतों से कोई इन्साफ़ मिलने वाला है और न ही एक कट्टरपन्थी ताक़त के ख़िलाफ़ दूसरी कट्टरपन्थी ताक़त बनाने, सत्ता के दमन के ख़िलाफ़ दमन के दूसरे रूपों को उभारने से ही कुछ होने वाला है। ज़रूरत इस बात की है कि एक तरफ़ व्यापक मेहनतकश, मज़दूर आबादी को आर्थिक, संवैधानिक और राजनैतिक हितों के लिए संघर्ष करते हुए एकजुट किया जाये और इसके साथ-साथ जनता में मौजूद पिछड़ी कदरों-क़ीमतों, विचारों, अन्ध-विश्वासों के ख़िलाफ़ लड़ा जाये, उनको धर्म, जाति, फिरके आदि तुच्छ बँटवारों से उपर उठकर व्यापक एकता बनाने के लिए शिक्षित किया जाये और हर तरह की फासीवादी, मूलवादी और कट्टरपन्थी ताक़तों के विरुद्ध व्यापक प्रचार मुहिमें चलायी जायें, उनके लोगों को बाँटने और आपस में लड़ाने के मंसूबों को लोगों में नंगा किया जाये और इस लड़ाई को इस पूरे पूँजीवादी ढाँचे के ख़ात्मे की दिशा में आगे बढ़ाया जाये। यही '84 के क़त्लेआमों के पीड़ितों के साथ सही इन्साफ़ होगा, उनमें जान खो चुके लोगों को सच्ची श्रद्धांजलि होगी और यही एकमात्र रास्ता है जिससे हम भविष्य में '84 जैसे मंजर फिर दुहराये जाने से बच सकेंगे।

- गुरप्रीत

भारत सरकार द्वारा एक महीने में हथियार ख़रीद के दो बड़े फ़ैसले

जनता को तोपें और बमवर्षक नहीं बल्कि रोटी, रोज़गार, सेहत व शिक्षा जैसी बुनियादी ज़रूरतें चाहिए

भारत की 130 करोड़ आबादी में से 70 प्रतिशत से अधिक आबादी ग़रीबी में जी रही है। मानवीय विकास सूचकांक में भारत का 135वाँ स्थान है। यहाँ रोज़ाना लगभग 9000 बच्चे भूख और इससे पैदा हुई बीमारियों के कारण मारे जाते हैं। 60 प्रतिशत बच्चे और महिलाएँ कुपोषण का शिकार हैं। संसार के कुल बँधुआ मज़दूरों में से आधे भारत में हैं। लगभग 30 करोड़ लोगों के पास रहने के लिए कोई पक्का ठिकाना नहीं है। 60 प्रतिशत लोगों को पीने का साफ़ पानी उपलब्ध नहीं है। बहुसंख्यक लोगों की शिक्षा और सेहत जैसी बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच नहीं है। बाल मज़दूरों, अनपढ़ों, बेरोज़गारों की कोई गिनती ही नहीं है। इस बहुसंख्यक आबादी को रोटी, पानी, मकान, सेहत व शिक्षा जैसी बुनियादी ज़रूरतों की दरकार है। भारत सरकार ने इन्हीं लोगों का "ख़याल रखते हुए" विगत 25 अक्टूबर और फिर 22 नवम्बर को एक-के-बाद-एक 80,000 करोड़ और 15,750 करोड़ के हथियार व अन्य फ़ौजी साजो-सामान ख़रीदने के अहम फ़ैसले लिये हैं। जी हाँ, ग़रीबी-बदहाली से जूझते लोगों के लिए भारत सरकार हथियार ख़रीद रही है क्योंकि सरकार के मुताबिक़ तो देश के नागरिकों को सबसे बड़ा ख़तरा "विदेशी दुश्मनों" से है!

25 अक्टूबर को रक्षामन्त्री अरुण जेतली के नेतृत्व में हुए 80 हज़ार करोड़ के पहले फ़ैसले में सबसे बड़ा फ़ैसला भारत में ही 50,000 करोड़ की लागत से 6 पनडुब्बियाँ तैयार करने का है। इज़रायल के साथ भी 8,356 एण्टी टैंक गाइडेड मिसाइलें ख़रीदने व मिसाइलों के लिए 321 लांचर ख़रीदने का समझौता हुआ है। इसके अलावा हिन्दोस्तान एरोनॉटिक्स लिमिटड से 1,850 करोड़ के 12 आधुनिक सेंसर के साथ लैस डारनियर रखवाला जहाज़ ख़रीदने, पैदल सेना के लिए 662 करोड़ लागत के 362 युद्ध करनेवाले वाहन ख़रीदने और 662 करोड़ की लागत के साथ रेडियो रिलेय कन्नटेनर ख़रीदने के समेत कई सौदों को हरी झण्डी दी गयी है। इसी तरह 22 नवम्बर को फिर नये बने रक्षामन्त्री मनोहर परिकर के नेतृत्व में 15,750 करोड़ की लागत के साथ 814 तोपें ख़रीदने का फ़ैसला लिया है।

इन सौदों के पीछे दोनों रक्षामन्त्रियों और भारत सरकार का तर्क था कि चीन और पाकिस्तान जैसे विदेशी दुश्मनों के आगे वह भारत को "लाचार नहीं होने देंगे" और उनका "मुकाबला करने के लिए" भारतीय सेना का आधुनिकीकरण करना तथा फ़ौज के हथियारों व साधनों को और उन्नत करना लाजिमी है। यह भी उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के नेतृत्व वाली पुरानी सरकार ने भी आख़िरी छह महीनों में 1 लाख करोड़ से भी और ज़्यादा राशि के रक्षा सौदों को मंज़ूरी दी थी और अब मोदी सरकार के एक महीने में ही लगभग 1 लाख करोड़ के सौदों की मेहरबानी के साथ भारत पिछले कुछ महीनों में ही हथियारों और सेना की अन्य सामग्री पर 2 लाख करोड़ से भी ज़्यादा राशि ख़र्चने की योजना बना चुका है। इतना ही नहीं नये रक्षामन्त्री मनोहर परिकर ने तो मोदी के मन्त्रालय में आते ही अपने इरादे स्पष्ट कर दिये थे और कहा था कि "हमें अगले तीन सालों के दौरान अपनी सामर्थ्य में विस्तार करने की ज़रूरत है। हथियारबन्द दस्तों को साजो-सामान मुहैया कराने की ज़रूरत है। प्रधानमन्त्रीजी ने मुझे ज़िम्मा सौंपा है कि रक्षा दस्तों को हर तरह की मदद मुहैया करवायी जाये। इसके लिए ख़रीदो-फ़रोख़्त में तेज़ी लायी जायेगी।" इसी का नतीजा है कि मन्त्री बनने के दो हफ़्तों के अन्दर ही 15,000 करोड़ तोप पर बहाने की तैयारी कर दी, और यहीं पर बस नहीं होने दी। 22 नवम्बर को हुई बैठक में हवाई जहाज़ और निगरानी जहाज़ ख़रीदने का फ़ैसला टाल दिया गया है जो नजदीक भविष्य में ही अमल में लाया जायेगा और कई अन्य बड़े सौदे होंगे, क्योंकि मोदी सरकार ने "तीन सालों के दौरान अपनी सामर्थ्य में विस्तार" करना है।

इन हथियारों की ख़रीद के पीछे दिया जाता तर्क "विदेशी दुश्मनों से सुरक्षा" कोरी बकवास है। वास्तव में भारत सरकार देश के लोगों से डरती है और उन पर दमन बढ़ाने, उनके हक़ और गुस्से की हर आवाज़ को दबाने के लिए ही फ़ौजी मशीनरी को और ज़्यादा आधुनिक, और ज़्यादा दैत्याकार तथा और ज़्यादा मज़बूत कर रही है। कारण भी साफ़ है कि संसार पूँजीवादी ढाँचे के आर्थिक संकट की लपेट में आये भारतीय अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए भारत का पूँजीपति वर्ग मेहनतकश आबादी की लूट बढ़ाकर, उनको दी जाती जन-सुविधाएँ छीनकर अपनी तिजोरियों में डालना चाहती है। इसी लिए उन्होंने गुज़रात दंगों के नायक मोदी को अपना प्रतिनिधि बनाया है, क्योंकि लोगों को और ज़्यादा लूटने-पीटने के लिए उनको राहुल (और कांग्रेस) जैसा नाजुक-कोमल-सा प्रतिनिधि नहीं चाहिए, बल्कि ज़्यादा अत्याचारी, बदमाश और बेरहम प्रतिनिधि चाहिए जोकि मोदी है। मोदी ने आते ही लोगों के मुँह से निवाले छीनकर पूँजीपति वर्ग को परोसने शुरू कर दिये हैं, विदेशी निवेशकों को बुलाना शुरू कर दिया है, लोगों को दी जाती सहूलियतें और अधिकारों को छीनना शुरू कर दिया है और ज़रूरत पड़ने पर लोगों पर डण्डा चलाना भी शुरू कर दिया है। लोगों के बढ़ते गुस्से और बेचैनी के लिए मोदी अपना डण्डा और मज़बूत करना चाहता है। इतना ही नहीं, मोदी भारतीय हिन्दू कट्टरपन्थी ताक़त 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' का प्रतिनिधि भी है जो भारत को एक हिन्दुत्वी साँचे में ढालना चाहती है। यह हिन्दुओं के बिना सभी राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों (ख़ासतौर पर मुसलमानों और इसाईयों को) को ग़ैर-भारतीय और अपना दुश्मन मानते हैं और उनको देश के अन्दर दूसरे दर्जे के नागरिक बनाकर रखने में विश्वास रखते हैं। अपने इस हिन्दुत्वी एजेण्डे और देसी-विदेशी पूँजीपतियों के हितों की सेवा के लिए इसको अत्याचारी और ताक़तवर राज मशीनरी (फ़ौज, अदालतें, क़ानून, पुलिस आदि) की ज़रूरत है। इसी ज़रूरत को पूरा करने के लिए हथियारों के ये बड़े सौदे किये जा रहे हैं। हथियारों और फ़ौजी मशीनरी की इस ख़रीद को जायज़ ठहराने के लिए दूसरी तरफ़ सरहदों पर नक़ली तनाव पेश करके अन्धराष्ट्रवाद की भावना को भी ख़ूब प्रोत्साहन दिया जाता है। इस काम में मोदी के चमचों और भारतीय पूँजीपतियों के टीवी चैनल, अख़बार बढ़-चढ़कर लगे हुए हैं। फ़ौज के आधुनिकीकरण और उसे मज़बूत बनाने की यह प्रक्रिया तो काफ़ी पहले तब से शुरू हो चुकी है जब भारतीय फ़ौज के प्रमुख के ये बयान आने शुरू हुए थे कि "फ़ौज कमजोर हो रही है, इसको नये हथियारों की ज़रूरत है।" यह तथ्य भी सबके सामने ही है कि पिछले कई सालों में भारतीय हथियार "विदेशी दुश्मनों" के ख़िलाफ़ उतने नहीं इस्तेमाल किये गये जितने कश्मीर, मणिपुर और पूर्वी भारत के दूसरे हिस्सों में लोगों की आवाज़ को दबाये रखने के लिए, मध्य भारत में आदिवासियों को कुचलने के लिए और समय-समय पर देश के अन्दर लोगों के व्यापक संघर्षों को कुचलने के लिए इस्तेमाल किये गये हैं। इसलिए देश के बहुगिनती मेहनतकश आबादी के असली दुश्मन सरहदों के पार नहीं बल्कि देश के भीतर ही हैं। वह देश के पूरे आर्थिक और राजनीतिक ताने-बाने समेत अपनी मूल्य-मान्यताओं, संस्कृति और विचारों के द्वारा समाज के हर रेशे में अपनी मज़बूत पकड़ बनाये बैठे हैं।

यह सब इस तथ्य से भी समझा जा सकता है कि 'विश्व बैंक' के मुताबिक़ भारत सरकार शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पादन का सिर्फ़ 3.4 प्रतिशत और सेहत पर सिर्फ़ 1.3 प्रतिशत ही ख़र्च करती है। मतलब दोनों क्षेत्रों पर साल का 1 लाख करोड़ से भी कम। इसमें से भी बड़ा हिस्सा नौकरशाहों, अफ़सरों की तनख़्वाहें आदि में चला जाता है, लोगों को सहूलियतें देने के लिए बहुत कम राशि ही पहुँचती है। तस्वीर का दूसरा पहलू हम ऊपर पहले ही साफ़ कर चुके हैं कि लोगों को पीटने के लिए कुछ महीनों के अन्दर ही 2 लाख करोड़ से भी ज़्यादा राशि ख़र्ची जा चुकी है।

उपरोक्त प्रमुख कारण के बिना इन फ़ैसलों के कुछ और पहलू भी हैं। इन दोनों फ़ैसलों में यह बात ख़ास रही कि इनमें से काफ़ी सामग्री भारत में ही बनाने की तजवीज रखी गयी है और इस तरह 15 अगस्त को मोदी के दिये भाषण के 'मेक इन इण्डिया' नारे पर फूल चढ़ाये जा रहे हैं। यह बात भी सहज ही समझी जा सकती है। इसका कारण है कि भारतीय पूँजीपति वर्ग को संकट में से निकलने के लिए विदेशी पूँजी की भी काफ़ी सख्त ज़रूरत है। भारत का हाल यह है कि इसके पास अपने विदेशी क़र्ज़े की किश्तों का भुगतान करने के लिए विदेशी मुद्रा भी बड़ी मुश्किल से ही है। इसीलिए विदेशी निवेशकों के लिए भारत में रास्ता सपाट किया जा रहा है। हथियारों के मामलो में इसकी शुरुआत तो मोदी के 15 अगस्त के भाषण से पहले ही मोदी सरकार का बजट आते समय हो चुकी थी, जब बजट में रक्षा क्षेत्र में 49 प्रतिशत विदेशी पूँजी के निवेश को छुट दी गयी थी। इस क्षेत्र में विदेशी पूँजी के निवेश को व्यावहारिक रूप देने के लिए भी यह ज़रूरी था कि हथियारों व अन्य साजो-सामान की माँग पैदा की जाये, जिससे विदेशी पूँजी आकर भारतीय पूँजीपति वर्ग को संकट में से निकलने में कुछ राहत दिलाये। इसलिए भी "तीन सालों के अन्दर अपनी सामर्थ्य में विस्तार की ज़रूरत" और "विदेशी दुश्मनों से ख़तरा" जैसे बहाने बनाये जा रहे हैं।

जनता की अपने अधिकारों के लिए उठायी आवाज़ को कुचलने की मोदी की कोशिशें सिर्फ़ सेना के मज़बूतीकरण तक ही सीमित नहीं है। भारतीय सत्ता के बाक़ी अंग जैसे अदालतें, क़ानून व्यवस्था और पुलिस भी इसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। एक तो मज़दूरों, मेहनतकशों को मिले मामूली अधिकारों, श्रम क़ानूनों में मोदी बड़े स्तर पर संशोधन करके इनको अमीरों, पूँजीपतियों के हक़ में बदल रहा है और साथ ही पंजाब, छत्तीसगढ़ समेत देश के अन्य कई हिस्सों में काले क़ानून बनाकर उनके अपने हक़ों के लिए आवाज़ उठाने को ही ग़ैर-क़ानूनी बनाया जा रहा है। पुलिस द्वारा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करके बेरोज़गारों, छात्रों, कर्मचारियों आदि को बेरहमी के साथ पीटना तो काफ़ी पहले से ही चल रहा है और इस साल तो इसमें और तेज़ी व बेरहमी आती दिखायी दे रही है। इस दमन में औरतों को भी नहीं छोड़ा जाता। यह पूरी स्थिति यह साफ़ करती है कि सरकार के पास लोगों को देने के लिए धक्के, मार-पीट और दमन ही है। इसके लिए वह लोगों से ही टैक्सों के रूप में इकट्ठा की अरबों की कमाई लोगों को रोटी, पानी, सेहत, शिक्षा जैसी बुनियादी सहूलियतें देने की जगह उनको और बेरहमी के साथ पीटने तथा और अधिक बदतर हालात में जीते रहने पर मजबूर करने के लिए ख़र्च कर रही है। आने वाले दिन भारत की मेहनतकश जनता के लिए और भी दुश्वारियों भरे होने वाले हैं। इसका सामना करने के लिए सभी बहादुर मज़दूरों, कामगारों, छात्रों, युवाओं और इन्साफ़पसन्द नागरिकों की एकजुटता आज के समय की माँग है।

– रौशन

सरमायेदारी के सरदारों की साज़िशें और सौदेबाज़ियाँ और मज़दूर वर्ग के लिए सबक

(पेज 10 से आगे)

आनेवाले समय में साम्राज्यवाद का बढ़ता संकट हमारे देश में भी राजनीतिक व सामरिक संकट पैदा कर सकता है। ऐसे में, मज़दूरों की बग़ावतें होंगी, छात्रों-युवाओं के आन्दोलन होंगे, ग़रीब किसान सड़कों पर उतरेंगे! लेकिन क्या ये बग़ावतें ख़ुद-ब-ख़ुद मज़दूर क्रान्ति और मज़दूर सत्ता की ओर जा सकती हैं? कभी नहीं! आनेवाला समय उथल-पुथल भरा होगा! आनेवाला समय विद्रोहों का समय होगा! लेकिन समाजवाद की घड़ी को समाजवाद में तब्दील करने के लिए हमारे पास मज़दूर वर्ग की एक तपी-तपायी, क्रान्तिकारी, हिरावल पार्टी होनी चाहिए। इसके बग़ैर, समाजवाद की घड़ी बीत जायेगी और हमारी सज़ा होगी – युद्ध, तबाही, फासीवाद! साम्राज्यवाद के बढ़ते अन्तरविरोधों को समझना इसीलिए ज़रूरी है कि हम अपने आज के कार्यभार को समझ सकें। मिस्र में पिछले चार-पाँच वर्षों में ही कई बार क्रान्तिकारी परिस्थितियाँ आयीं, लेकिन मार्क्सवाद-लेनिनवाद की वैज्ञानिक विचारधारा से लैस मज़दूर वर्ग की एक हिरावल पार्टी की ग़ैर-मौजूदगी में उसे क्रान्ति में तब्दील नहीं किया जा सका। ऐसी ही स्थिति कुछ अन्य देशों में भी दुहरायी गयी। साम्राज्यवाद पतली रस्सी पर ज़रूर चल रहा है, लेकिन यह बिना धक्के के नहीं गिरने वाला है। उसे गिराने के लिए बल की ज़रूरत है; बल लगाने के लिए बल लगाने वाली संगठित शक्ति की ज़रूरत है; बल लगाने वाली संगठित शक्ति को यह पता होना चाहिए बल कैसे और किस दिशा में लगाना है। यही हमारी **आज की ज़रूरत है। यही हमारा आज का कार्यभार है – क्रान्ति के विज्ञान की समझदारी को हासिल करना! इस समझदारी के आधार पर मज़दूर वर्ग की एक क्रान्तिकारी हिरावल पार्टी का निर्माण करना!**

मज़दूर वर्ग के महान नेता स्तालिन के जन्मदिवस (21 दिसम्बर) के अवसर पर

पार्टी मजदूर वर्ग का संगठित दस्ता है

पार्टी मज़दूर वर्ग का केवल अग्रदल ही नहीं है। यदि वह अपने वर्ग के संघर्षों का वास्तविक संचालन करना चाहती है तो उसे सर्वहारा का संगठित दस्ता भी होना पड़ेगा, पूँजीवाद की परिस्थितियों में पार्टी के कार्य अत्यन्त गम्भीर और विविध हैं। भीतरी और बाहरी विकास की अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में उसे सर्वहारा वर्ग के संघर्षों का नेतृत्व करना होगा। जब परिस्थिति आक्रमण के अनुकूल हो तब उसे अपने वर्ग को लेकर चढ़ाई करनी होगी; और जब स्थिति प्रतिकूल हो जाए तो शक्तिशाली दुश्मन के प्रहार से उसे बचाने के लिए अपने वर्ग को पीछे हटा लाना होगा। साथ ही पार्टी के बाहर के करोड़ों असंगठित मज़दूरों को संघर्ष का ढंग और अनुशासन सिखलाना होगा और उनमें संगठन और सहनशीलता की भावना उत्पन्न करनी होगी। पार्टी यह सब काम तभी पूरा कर सकती है जब वह स्वयं संगठन और अनुशासन का आदर्श रूप हो, जब वह स्वयं सर्वहारा वर्ग का संगठित दस्ता हो। पार्टी में अगर ये गुण न हों तो वह करोड़ों सर्वहारा का पथ प्रदर्शन करने की बात भी नहीं सोच सकती।

पार्टी मज़दूर वर्ग का संगठित दस्ता है।

पार्टी नियमावली के पहले अनुच्छेद में ही लेनिन का यह सर्वप्रसिद्ध सिद्धान्त विद्यमान है कि पार्टी को एक संगठित इकाई होना चाहिए। उक्त अनुच्छेद में पार्टी को अपने विभिन्न संगठनों का योगफल माना गया है और कहा गया है कि इनमें से किसी संगठन का सदस्य ही पार्टी का सदस्य हो सकता है। मेंशेविकों ने 1903 में ही लेनिन के इस सिद्धान्त का विरोध किया था और एक संशोधन द्वारा उसकी जगह यह विधान करना चाहा था कि सीधे पार्टी में भर्ती होने की "व्यवस्था" हो; और ऐसे प्रत्येक "प्रोफेसर" और "कॉलेज के विद्यार्थी" को, प्रत्येक "हमदर्द" और "हड़ताली" को पार्टी सदस्यता की "पदवी" दी जाये जो किसी भी तरह से पार्टी का समर्थन करता हो, उनका कहना था कि पार्टी के प्रत्येक सदस्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह पार्टी के मातहत किसी न किसी संगठन में काम करता हो या करने के लिए उत्सुक हो। यह प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है कि यदि पार्टी के अन्दर यह अनोखी "व्यवस्था" प्रतिष्ठित हो जाती तो उसमें प्रोफेसरों और कालेज के विद्यार्थियों की बाढ़ सी आ जाती और "हमदर्दों" के समुद्र में डूबती-उतराती हमारी पार्टी अपने आदर्श से स्खलित होकर एक ढीला-ढाला, असंगठित और शृंखलाहीन "ढाँचा" बनकर रह जाती। इस हालात में पार्टी और मज़दूर वर्ग के बीच का अन्तर मिट जाता और असंगठित जनसाधारण को अग्रदल के स्तर तक उठाने का पार्टी का उद्देश्य ही छिन्न-भिन्न हो जाता। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस तरह की अवसरवादी "व्यवस्था" में हमारी पार्टी क्रान्ति के दौरान सर्वहारा वर्ग का संगठन केन्द्र बनने का कार्य न कर पाती।

इस सम्बन्ध में लेनिन ने लिखा था, "मार्तोव के दृष्टिकोण से पार्टी की सीमाएँ अनिश्चित हैं क्योंकि उनके अनुसार 'प्रत्येक हड़ताली... अपने को पार्टी का सदस्य घोषित' कर सकता है। इस लचीलेपन से क्या लाभ हो सकता है? उनका कहना है कि इससे पार्टी के 'नाम' का दूर-दूर तक प्रचार हो जायेगा। किन्तु इस व्यवस्था से बहुत भारी हानि होगी। पार्टी और वर्ग का भेद अस्पष्ट हो जायेगा जिससे पार्टी के अन्दर विघटन का घुन लग जायेगा।" (लेनिन ग्रन्थावली, खण्ड 6, पृ. 211)

किन्तु पार्टी अपने नीचे के संगठनों का केवल योगफल ही नहीं है; वह उन संगठनों की एकरस व्यवस्था को भी व्यक्त करती है। वह विभिन्न पार्टी संगठनों की नियमित एकता का केन्द्र है। उसके साथ वे अभिन्न रूप से बँधे हुए हैं, पार्टी के भीतर नेतृत्व की ऊँची और नीची समितियाँ हैं, उसके अन्दर अल्पमत को बहुत के आगे सिर झुकाना पड़ता है और बहुमत के व्यावहारिक निर्णय सभी पार्टी सदस्यों के लिए मान्य होते हैं। इन लक्षणों के अभाव में पार्टी एक एकरस, संगठित और सम्पूर्ण संस्था नहीं बन सकती और न वह मज़दूर वर्ग के संघर्ष का व्यवस्थित और संगठित रूप से नेतृत्व करने में ही समर्थ हो सकती है।

लेनिन ने कहा है, "पहले हमारी पार्टी एक नियमपूर्वक संगठित दल न होकर विभिन्न गुटों का जोड़ थी; इसलिए इन गुटों में विचार साम्य को छोड़कर और कोई सम्बन्ध न था। अब हम एक संगठित पार्टी हैं जिसका अर्थ है अब हम अनुशासन सूत्र में बँध गये हैं। विचारों की शक्ति अनुशासन में बदल गई है। पार्टी की निम्न संस्थाओं को उच्चतर संस्थाओं के आदेशों को मानना पड़ता है।" (वही, पृ. 291)

अल्पमत का बहुमत से अनुशासित होने तथा एक केन्द्र द्वारा पार्टी कार्य का संचालन करने के सिद्धान्तों को लेकर ढीले-ढाले और अस्थिर विचार के लोग पार्टी को "नौकरशाहों" का और 'औपचारिकतावादी' संगठन बतलाते हैं। यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है कि इन सिद्धान्तों का पालन किये बिना पार्टी न तो एक संगठित संस्था के रूप में और व्यवस्थित ढंग से अपना कार्य कर सकती है और न मज़दूर वर्ग के संघर्षों का ही संचालन कर पाती है। संगठन के क्षेत्र में लेनिनवाद का तात्पर्य है इन सिद्धान्तों का दृढ़तापूर्वक प्रयोग करना। इन सिद्धान्तों के विरोध को लेनिन ने "रूसी नकारवाद" और "राजसी अराजकतावाद" का नाम दिया था। वास्तव में इस तरह का विरोध मात्र उपहास की चीज हैं और उसे हमें तिरस्कारपूर्वक ठुकरा देना चाहिए।

'एक कदम आगे दो कदम पीछे' नामक अपनी पुस्तक में लेनिन ने इन ढुलमुल विचार वाले लोगों के सम्बन्ध में ये बातें लिखी हैं, "यह राजसी अराजकतावाद रूसी निहिलिस्टों (नकारवादियों) की विशेषता है। पार्टी संगठन को वे भयानक 'फैक्टरी' समझते हैं; उनके विचार से पार्टी के विभिन्न अंगों का तथा अल्पमत का पूरी पार्टी से अनुशासित होना 'दासता' है। कुछ करुणा और कुछ हास्यास्पद स्वर में वे केन्द्र की देखरेख में काम के बँटवारे के सम्बन्ध में कहते हैं कि उससे लोग मशीन के 'कल पुर्जे' बन जाते हैं... पार्टी के संगठन सम्बन्धी नियमों पर वे मुँह बिचकाते हैं और बड़ी घृणा से... कहते हैं कि बिना नियम के ही काम चल सकता है।

मेरा ख्याल है कि तथाकथित नौकरशाही की बात करके ये लोग जो हायतौबा मचाया करते हैं वह स्पष्टत: केन्द्रीय संस्थाओं के सदस्यों के प्रति अपने असन्तोष को ढँके रखने का केवल एक बहाना है... तुम नौकरशाह हो, क्योंकि पार्टी कांग्रेस ने तुम्हें मेरी इच्छाओं के अनुसार नहीं बल्कि उनके विरुद्ध नियुक्त कर दिया है। तुम नियमवादी हो, क्योंकि तुम मेरी सहमति की परवाह न करके कांग्रेस के नियमित निर्णयों को मानते हो! तुम एक जड़ के समान काम करते हो, क्योंकि केन्द्रीय संस्थाओं में सम्मिलत होने के सम्बन्ध में मेरी निजी इच्छाओं की ओर ध्यान न देकर तुम पार्टी कांग्रेस के 'यांत्रिक' बहुमत के आदेशों को ही प्रमाणिक मानते हो! तुम निरंकुश हो, क्योंकि तुम पुराने गुटों को पार्टी संचालन का अधिकार देने के विरुद्ध हो (यहाँ अक्सेलरोद, मार्तोव, पोत्रेसोव आदि का जिक्र किया गया है। उन्होंने दूसरी कांग्रेस के निर्णयों को मानने से इन्कार कर दिया और लेनिन पर "नौकरशाह" होने का आरोप लगाया)!" (लेनिन, ग्रन्थावली, खण्ड 10, पृ. 280, 310)

(स्तालिन की कृति 'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त' के अंश)

चीनी क्रान्ति के महान नेता माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस (26 दिसम्बर) के अवसर पर

माओ त्से-तुङ सिर्फ चीनी जनता के लम्बे क्रान्तिकारी संघर्ष के बाद लोक गणराज्य के संस्थापक और समाजवाद के निर्माता ही नहीं थे, मार्क्स और लेनिन के बाद वे सर्वहारा क्रान्ति के सबसे बड़े सिद्धान्तकार और हमारे समय पर अमिट छाप छोड़ने वाले एक महानतम क्रान्तिकारी थे।

माओ-त्से-तुङ ने चीन में रूस से अलग समाजवाद के निर्माण की नयी राह चुनी और उद्योगों के साथ ही कृषि के समाजवादी विकास पर तथा गाँवों और शहरों का अन्तर मिटाने पर भी विशेष ध्यान दिया। आम जन की सर्जनात्मकता और पहलकदमी के दम पर बिना किसी बाहरी मदद के साम्राज्यवादी घेरेबन्दी के बीच उन्होंने अकाल, भुखमरी और अफीमचियों के देश चीन में विज्ञान और तकनोलाजी के विकास के नये कीर्तिमान स्थापित कर दिये, शिक्षा और स्वास्थ्य को समान रूप से सर्वसुलभ बना दिया, उद्योगों के निजी स्वामित्व को समाप्त करके उन्हें सर्वहारा राज्य के स्वामित्व में सौंप दिया और कृषि के क्षेत्र में कम्यूनों की स्थापना की। इस अभूतपूर्व सामाजिक प्रगति से चकित-विस्मित पश्चिमी अध्येताओं तक ने चीन की सामाजिक-आर्थिक प्रगति और समतामूलक सामाजिक ढाँचे पर सैकड़ों पुस्तकें लिखीं।

स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ में जब ख्रुश्चेव के नेतृत्व में एक नये क़िस्म का पूँजीपति वर्ग सत्तासीन हो गया तो उसके नकली कम्युनिज़्म के ख़िलाफ़ संघर्ष चलाते हुए माओ ने मार्क्सवाद को और आगे विकसित किया। पहली बार माओ ने रूस और चीन के अनुभवों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि समाजवाद के भीतर से पैदा होने वाले पूँजीवादी तत्व किस प्रकार मज़बूत होकर सत्ता पर क़ब्ज़ा कर लेते हैं। उन्होंने इन तत्वों के पैदा होने के आधारों को नष्ट करने के लिए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और चीन में 1966 से 1976 तक इसे सामाजिक प्रयोग में भी उतारा। यह माओ त्से-तुङ का महानतम सैद्धान्तिक अवदान है।

1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में भी देङ सियाओ-पिङ के नेतृत्व में पूँजीवादी पथगामी सत्ता पर क़ाबिज़ होने में कामयाब हो गये, क्योंकि पिछड़े हुए चीनी समाज के छोटी-छोटी निजी मिलकियतों वाले ढाँचे में समाजवाद आने के बाद भी पूँजीवाद का मज़बूत आधार और बीज मौजूद थे। लेकिन पूँजीवाद की राह पर नंगे होकर दौड़ रहे चीन के नये पूँजीवादी सत्ताधारी आज भी चैन की साँस नहीं ले सके हैं। माओ की विरासत को लेकर चलने वाले लोग आज भी वहाँ मौजूद हैं और संघर्षरत हैं।

आज से 52 वर्षों पहले 1962 में माओ त्से-तुङ ने भविष्य के बारे में जो आंकलन प्रस्तुत किया था, ऐतिहासिक रूप से वह आज भी सही है : "अब से लेकर अगले पचास से सौ वर्षों तक का युग एक ऐसा महान युग होगा जिसमें दुनिया की सामाजिक व्यवस्था बुनियादी तौर पर बदल जायेगी। यह एक ऐसा भूकम्पकारी युग होगा जिसकी तुलना इतिहास के पिछले किसी भी युग से नहीं की जा सकेगी। एक ऐसे युग में रहते हुए हमें उन महान संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए, जो अपनी विशेषताओं में अतीत के तमाम संघर्षों से कई मायनों में भिन्न होंगे।"

कम्युनिस्टों को हर समय सच्चाई का पक्षपोषण करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि हर सच्चाई जनता के हित में होती है(कम्युनिस्टों को हर समय अपनी गलतियाँ सुधारने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि गलतियाँ जनता के हितों के विरुद्ध होती हैं।

– माओ त्से-तुङ, ''मिलीजुली सरकार के बारे में'' (24 अप्रैल 1945)

कम्युनिस्टों को चाहिए कि वे सबसे ज्यादा दूरदर्शी बनें; आत्म-बलिदान के लिए सबसे ज्यादा तत्पर रहें, सबसे ज्यादा दृढ़ बनें, तथा स्थिति को आँकने में पूर्वधारणाओं से तनिक भी काम न लें, और बहुसंख्यक आम जनता पर भरोसा रखें और उसका समर्थन प्राप्त करें।

– माओ त्से-तुङ, ''जापानी-आक्रमण-विरोधी काल में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कर्तव्य'' (3 मई 1937)

हम कम्युनिस्ट बीज के समान होते हैं और जनता भूमि के समान होती है। हम लोग जहाँ कहीं भी जायें, वहाँ जनता के साथ एकता क़ायम करें, उसमें अपनी जड़ें जमा लें, और उसके बीच फलें-फूलें।

– माओ त्से-तुङ, ''छुङकिङ समझौता-वार्ता के बारे में'' (17 अक्टूबर 1945)

हम कम्युनिस्टों में यह क्षमता अवश्य होनी चाहिए कि हम सभी बातों में अपने को आम जनता के साथ एकरूप कर सकें। अगर हमारे पार्टी-सदस्य बन्द कमरे में बैठे रहकर सारी ज़िन्दगी गुज़ार दें और दुनिया का सामना करने व तूफ़ान का मुक़ाबला करने के लिए कभी बाहर ही न निकलें, तो चीनी जनता को उसे क्या फ़ायदा होगा? रत्तीभर भी नहीं, और इस तरह के पार्टी-सदस्य हमें नहीं चाहिए। हम कम्युनिस्टों को दुनिया का सामना करना चाहिए और तूफ़ान का मुक़ाबला करना चाहिए; यह दुनिया जन-संघर्षों की विशाल दुनिया है तथा यह तूफ़ान जन-संघर्षों का ज़बरदस्त तूफ़ान है।

– माओ त्से-तुङ, ''संगठित हो जाओ !'' (29 नवम्बर 1943)

एक कम्युनिस्ट को हठधर्मी नहीं होना चाहिए, और न ही उसे दूसरों पर रोब जमाने की कोशिश करनी चाहिए, उसे ऐसा हरगिज़ नहीं समझना चाहिए कि वह खुद तो हर चीज़ का माहिर है और दूसरों को कतई कुछ भी नहीं आता; उसे अपने को अन्दर बन्द नहीं कर लेना चाहिए, या अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने तथा शेखी बघारने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, और न ही दूसरों पर सवारी गाँठने की कोशिश करनी चाहिए।

–माओ त्से-तुङ, ''शेनशी-कानसू-निङ्या सीमान्त क्षेत्र की प्रतिनिधि-सभा में भाषण'' (21 नवम्बर 1941)

निवेश के नाम पर चीन के प्रदूषणकारी उद्योगों को भारत में लगाने की तैयारी

मोदी सरकार की 'मेक इन इण्डिया' की नीति ने चीन जैसे देशों के लिए बड़ी सहूलियत पैदा कर दी है। उन्हें अपने देश के अत्यधिक प्रदूषण पैदा करनेवाले और पुरानी तकनीक पर आधारित उद्योगों को भारत में ढीले और लचर श्रम क़ानूनों की बदौलत यहाँ खपा देने का मौक़ा मिल गया है। पिछले तीन दशकों से चीन में लगातार जारी औद्योगिकीकरण ने चीन की आबोहवा को इस कदर प्रदूषित कर डाला है कि वहाँ के कई शहरों में वायु प्रदूषण के चलते हमेशा एक धुन्ध जैसी छायी रहती है। यह किस ख़तरनाक हद तक मौजूद है इसे सिर्फ़ इस बात से समझा जा सकता है कि यहाँ एक क्यूबिक मीटर के दायरे में हवा के प्रदूषित कण की मात्रा 993 माइक्रोग्राम हो गयी है जबकि इसे 25 से अधिक नहीं होना चाहिए। एक अन्तरराष्ट्रीय संस्था की रिपोर्ट के मुताबिक़ दुनिया के 20 सर्वाधिक प्रदूषित शहरों में 16 तो चीनी शहर ही हैं और ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में इसका स्थान तीसरा है। चीन के पर्यावरण के लिए ये महाविपदा साबित हो रही हैं।

उद्योगों के तीव्र और असन्तुलित विकास का असर जल स्रोतों पर भी हुआ है। वहाँ जल प्रदूषण ने भंयकर रूप ले लिया है। अभी पिछले कुछ महीने पूर्व यह ख़बर आयी थी कि जोजियांग इलाक़े के लोगों ने एक सुबह देखा कि उस क्षेत्र से होकर गुजरनेवाली नदी अचानक सुर्ख लाल हो चुकी है। निश्चय ही नदी में वहाँ के कारख़ानों से निकला रासायनिक कचरा डाला गया था। उस क्षेत्र में खाद और काग़ज़ के कारख़ानों के साथ खाद्य पदार्थ में रंग मिलानेवाले और कपड़े रंगनेवाले कारख़ाने चलते हैं। ये सभी ज़हरीला रासायन पैदा करनेवाले कारख़ाने हैं। ज़ाहिर है, औद्योगिकीकरण के तेज़ रफ़्तार में मिल मालिकों पर इन कचरों के निपटान का समुचित प्रबन्ध करने का कोई दबाव नहीं था। सो बरसात के मौसम को देखते हुए उन्होंने यह सोचकर इसे नदी में प्रवाहित कर दिया कि बारिश का पानी इस कचरे को बहा ले जायेगा। अब चीनी जनता की जान जाती है, तो जाये! कचरा निपटान पर आनेवाले ख़र्च को बचाकर ही मुनाफ़े की दर को और अधिक बढ़ाया जा सकता था। लेकिन इस बार बरसात देर से हुई और इनकी पोल-पट्टी खुल गयी। प्रदूषण पैदा करनेवाले इन उद्योगों के चलते ज़मीन के कई फ़ीट नीचे तक का पानी भी प्रदूषित हो चुका है। सरकारी आँकड़ों में यह दर्ज है कि वहाँ कुल भूजल वाले क्षेत्रों में 59.6 प्रतिशत की दशा अत्यन्त शेचनीय है।

आज चीन में सबसे अधिक सस्ता और सबसे अधिक प्रदूषण के लिए ज़िम्मेदार कोयले का इस्तेमाल कच्चे माल के रूप में दुनिया के किसी देश के मुकाबले सबसे अधिक होता है। इन कोयला आधारित उद्योगों के लिए जिसमें बिजली उत्पादन भी आता है, पानी के बहुत अधिक इस्तेमाल की ज़रूरत पड़ती है जिससे इन उद्योगों वाले इलाक़ों में पानी की बेहद कमी हो जाती है। इसकी वजह से आज उत्तरी चीन का इलाक़ा लगभग सूख ही चला है। इतना ही नहीं कोयला-रसायन आधारित उद्योग औसतन 9 टन एनिलीन पैदा करते हैं जिससे कैंसर हो सकता है। सच्चाई भी यही है कि कैंसर की बीमारी चीन में तेजी से फैल रही है। आँतों के कैंसर के रोगियों में 9.7 फ़ीसदी का इज़ाफ़ा हुआ है। वायु प्रदूषण के चलते फेफड़े और साँस नली के कैंसर के मरीज भी बढ़े हैं। इस बीमारी की गम्भीरता का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जाता है कि चीन के कई इलाक़े कैंसर ग्राम के नाम से जाने जाते हैं। चीन में जीडीपी या सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर भले ही 10 प्रतिशत रहती हो, परन्तु वहाँ औद्योगिक प्रदूषण से हर साल 750,000 मौतें भी होती हैं। अशुद्ध जल के शोधन या विषैले कचरे के निपटान अथवा प्रदूषण मुक्ति के लिहाज़ से उन्नत तकनोलॉजी के इस्तेमाल सम्बन्धी आर्थिक या अन्य नीतिगत क़दम उठाने की जगह चीन सरकार अब इन प्रदूषणकारी उद्योगों से ही, जिन्हें 'सनसेट इण्डस्ट्री' कहा जाता है, छुटकारा पाने का उपाय ढूँढ़ रही है। इस मकसद के लिए वह तरह-तरह के हथकण्डे अपनाकर ऐसे जानलेवा उद्योगों को तीसरी दुनिया के बंगलादेश, लाओस और वियतनाम समेत अपने पड़ोसी देशों के मत्थे मढ़ रही है। इसी सनसेट इण्डस्ट्री को लेकर हाल के दिनों में वियतनाम में चीन विरोधी दंगे भी हुए हैं। लेकिन भारत के मामले में चीन अपनी इस मुहिम में कामयाबी के करीब आता लग रहा है। पूँजीपति वर्ग के चहेते मोदी भारत में निवेश के लिए भीख का कटोरा लेकर खुद ही छोटे-बड़े सभी देशों में दौरा करते घूम रहे हैं। और नानाविध सुविधाओं का आश्वासन देकर उनके लालच को बढ़ा रहे हैं। ऐसे में चीन के लिए अपने प्रदूषणकारी तकनोलॉजीवाले उद्योगों को भारत में खपाना अन्य देशों की अपेक्षा अधिक आसान हो गया है। परन्तु चीनी हुक्मरान बेईमानी के साथ अपने इस इरादे पर पर्दा भी डालना चाहते हैं। लिहाज़ा सनसेट इण्डस्ट्री से मिलनेवाले लाभ को बढ़-चढ़कर पेश करने के प्रयास में लगे दिखायी देते हैं, जैसाकि चीनी पार्टी के मुखपत्र 'पीपुल्स डेली' के एक वरिष्ठ सम्पादक डिंग गैंग ने ग्लोबल टाइम्स समाचारपत्र में अपने लेख के हवाले से कहा, 'चीन के सनसेट उद्योग वहाँ हैं, जहाँ भारत की उम्मीदें हैं।' इस लेख में मोदी सरकार को चीन द्वारा निर्माण क्षेत्र में हासिल सफलता से सीखने की सलाह दी गयी है। चीन की आबोहवा और चीनी जनता के सेहत को तबाह-बर्बाद करनेवाले ये सनसेट उद्योग अपने देश में पर्यावरणकर्मियों के विरोध का सामना करने के चलते ही नहीं, बल्कि श्रम के बढ़ती दर व महँगी होती ज़मीन और उपकरण के चलते भी अपने से कम विकसित देशों की ओर रुख कर रहे हैं, जहाँ श्रम और ज़मीन दोनों ही सस्ते हैं। चीन के विभिन्न प्रान्तों से उद्यमियों का भारत आना शुरू हो गया है। ये अपने प्लाण्ट भारत और अन्य विकासशील देशों में स्थानान्तरित करने के मकसद से टेक्सटाइल, रसायन, लोहा व इस्पात और कम ऊर्जा की खपतवाले उद्योगों में सम्भावनाएँ तलाश रहे हैं। इससे भारत का पर्यावरण तबाह होता है तो होता रहे। पर्यावरण के विनाश और श्रम की लूट पर ही मोदी या पूँजी के किसी भी नुमाइन्दे के मैन्युफ़ैक्चरिंग हब की इमारत खड़ी हो सकती है। समूची पृथ्वी को पर्यावरण की तबाही से बचाने और जनजीवन के प्रदूषणमुक्त परिवेश के लिए कितने भी अन्तरराष्ट्रीय स्तर के सम्मेलन और सभी देशों के बीच सहमति बनाने के लिए चिन्तन-मन्थन क्यों न कर लिये जायें, पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के रहते इस विनाश को कभी रोका नहीं जा सकता। प्रदूषणकारी उद्योग इसी प्रकार फलते-फूलते रहेंगे और पूँजी के शोषणकारी सम्बन्ध इन मज़बूत देशों को पर्यावरण विनाश के लिए ज़िम्मेदार ऐसे 'सनसेट' उद्योगों को हमेशा कमजोर देशों के मत्थे मढ़ने का हौसला और ज़रिया देते रहेंगे।

– मीनाक्षी

पाखण्ड का नया नमूना रामपाल : आख़िर क्यों पैदा होते हैं ऐसे ढोंगी बाबा?

रामपाल के नाम से भारत की "महान सन्त परम्परा" में एक और नया नाम जुड़ गया है। लोगों को "सतलोक" पहुँचाने वाले इस धूर्त के खुद के सितारे आजकल गर्दिश में पहुँच गये हैं। हरियाणा के ज़िला हिसार के बरवाला वाले "सतलोक मुक्तिधाम" के कारण यह धूर्त कुख्यात हुआ जिसे इसने क़िले में तब्दील कर लिया था। इस किले को फ़तह करने में हरियाणा पुलिस व अर्द्धसैनिक बलों के करीब 45,000 जवानों के ख़ासे पसीने छूट गये थे। मामला था 2006 में हत्या के मुक़दमे में कोर्ट में सुनवाई के लिए पेश होने का। सन 2006 में रामपाल और उसके चेलों का आर्य समाज के लोगों के साथ ख़ूनी झगड़ा हुआ था। झगड़े का कारण बताया गया था रामपाल द्वारा आर्य समाज के दयानन्द सरस्वती की निन्दा, लेकिन असल कारण था आर्य समाज की दुकानदारी में रामपाल द्वारा सेंध लगाया जाना।

रामपाल कोर्ट के बार-बार बुलावे को ठेंगा दिखा रहा था। मीडिया की मानें तो रामपाल के पुराने और नये रिकॉर्ड को मिलाकर वह 42 बार तारीख़ पर पेश नहीं हुआ। इस मामले में पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट ने पेश न होने पर 5 नवम्बर को ग़ैर-जमानती वारण्ट जारी कर दिया था। रामपाल ने भी अपने करीब 15,000 अन्धभक्तों को आश्रम में जमा कर लिया था, ताकि एक तो अपने वोट बैंक का प्रदर्शन किया जा सके और दूसरा वक़्त आने पर ढाल के तौर पर इनका इस्तेमाल किया जा सके। ढाल के तौर पर इस्तेमाल होने के बाद बहुत से "भक्तजन" बाद में आँसू बहाते हुए अपने हाल पर पछता भी रहे थे लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। शुरू में अन्धभक्ति के कारण लोग आश्रम में आये लेकिन जब माजरा उनकी समझ में आने लगा तो परिवार के लोगों को एक-दूसरे से अलग करके, महिलाओं को उनके बच्चों से अलग करके, बाबा की खुद की गुण्डा फ़ौज द्वारा डरा-धमकाकर उन्हें रोके रखा गया। 60 घण्टे की घेरेबन्दी के बाद 19 नवम्बर को रामपाल को गिरफ़्तार कर लिया गया।

इस कार्रवाई में 5 महिलाओं और एक बच्चे समेत 6 मौतें हुईं, सैकड़ों लोग घायल हुए जिसमें पुलिस के जवान भी शामिल थे और करीब 27 करोड़ रुपया ख़र्च हुआ। आश्रम की तलाशी के दौरान भारी मात्रा में लाठियाँ, बन्दूकें, पेट्रोल बम और ज्वलनशील पदार्थ बरामद हुआ। इतना ही नहीं 12 एकड़ में फैले इस फाइव स्टारनुमा आश्रम में अपराध और धर्म का रिश्ता साफ़-साफ़ देखने को मिला। यहाँ पर शानदार स्विमिंग पूल से लेकर मिनी अस्पताल तक और महँगे फ़र्नीचर से लेकर लक्ज़री गाड़ियाँ तक मिली हैं। मोह-माया से ऊपर उठ चुके बाबा के बाथरूम और रसोई तक में ए.सी. लगा हुआ था। भारी मात्रा में अश्लील किताबें, प्रेगनेंसी किट, सेक्स-वर्धक दवाइयाँ भी बरामद हुई हैं। यही नहीं महिला स्नानागारों तक में गुप्त कैमरे लगे हुए मिले। अपने पाखण्ड को लोगों के सामने चमत्कार के रूप में दिखाने के लिए बाबा अत्याधुनिक तकनीक का इस्तेमाल करता था। लोगों से करोड़ों रुपया ठगकर यह पाखण्डी मृत्युलोक में ही "सतलोक" के मज़े लूट रहा था। इस तरह के तमाम मक्कार कई तरह के सवाल हमारे सामने खड़े कर देते हैं कि किस तरह दो कौड़ी के धूर्त अपनी दुकानदारी खड़ी कर लेते हैं? कैसे ये लोगों की चेतना को कुन्द करने का काम करते हैं? ऐसे लोग समाज में न पैदा हों उसके लिए क्या किया जा सकता है?

लोग पूँजीवादी व्यवस्था में व्याप्त सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा होने के कारण धर्म-कर्म के चक्कर में पड़ते हैं। पूँजीवादी समाज का जटिल तन्त्र और उसमें व्याप्त अस्थिरता किसी भाववादी सत्ता में विश्वास करने का कारण बनती है। असल में धार्मिक बाबाओं के पास लोग एकदम भौतिक कारणों से जाते हैं। किसी को रोज़गार चाहिए, किसी को सम्पत्ति के वारिस के तौर पर लड़का चाहिए, कोई अपनी बीमारी के इलाज के लिए जाता है तो किसी को धन चाहिए। यही नहीं बौद्धिक रूप से कुपोषित नेता-मन्त्री और खुद को पढ़े-लिखे कहने वाले लोग भी अपनी कूपमण्डूकता का प्रदर्शन करते रहते हैं। मौजूदा व्यवस्था की वैज्ञानिक समझ के बिना और तर्कशीलता और वैज्ञानिक नज़रिये से रीते होने के कारण लोग पोंगे-पण्डितों को अवतार पुरुष समझ बैठते हैं। ये ढोंगी बाबा एकदम विज्ञान पर आधारित कुछ ट्रिकों का इस्तेमाल करते हैं और अपनी छवि को चमत्कारी व अवतारी के तौर पर प्रस्तुत करते हैं। हरियाणा में कभी सिंचाई विभाग का जूनियर इंजीनियर रह चुका रामपाल भी चमत्कारी प्रभाव छोड़ने के लिए हाईड्रोलिक्स कुर्सी तथा रंगबिरंगी लाइटों का इस्तेमाल करता था। धार्मिक गुरु घण्टाल लोगों को तर्क न करने, पूर्ण समर्पण करने, दिमाग़ को ख़ाली रखने आदि जैसी "हिदायतें" लगातार देते रहते हैं। यहाँ पर 'श्रद्धावानम् लभते ज्ञानम्' के फ़ार्मूले पर काम करना सिखाया जाता है। लेकिन इस सबके बावजूद कुछ लोग इनके पाखण्ड को समझने की "भूल" कर बैठते हैं तो इन जैसों से ये बाबा दूसरे तरीक़े से निपटते हैं। अपने "भटके हुए" भक्तों की हत्या तक करवा देना इन बाबाओं के बायें हाथ का खेल है। आसाराम और नारायण साईं, कांची पीठ के शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती, डेरा सच्चा सौदा के गुरमीत राम रहीम, चन्द्रास्वामी, प्रेमानन्द आदि ऐसे चन्द उदाहरण हैं जिनके नाम अपने भक्तों को असली मोक्ष प्रदान करने में सामने आये हैं।

पूँजीवादी समाज में धर्म के नाम पर लागों को आत्मसुधार का पाठ पढ़ाने वाले ये पाखण्डी खुद अय्याशियों भरा जीवन जीते हैं। लोगों को परलोक सुधारने का लालच देकर इनकी तो सात पुश्तों तक का इहलोक सुधर जाता है। ये पण्डे-पुजारी, मुल्ले-मौलवी और साधु-सन्त लोगों को यह कभी नहीं बताते कि मेहनतकश जनता की बदहाली का कारण पूँजीपतियों की लूट है। ऐसा बताकर ये पूँजीपति वर्ग के हितों के ख़िलाफ़ नहीं जा सकते और स्वयं के पैरों पर कुल्हाड़ी नहीं मार सकते, क्योंकि तमाम बड़े-बड़े बाबाओं के खुद के पैसे व संसाधनों के बड़े-बड़े अम्बार लगे होते हैं। तमाम मोक्ष के ठेकेदार व्यवस्था के अन्तरविरोधों पर हमेशा परदा डालने का ही काम करते हैं। पूँजीवादी राज्यसत्ता भी हद दर्जे की कूपमण्डूकताओं और अन्ध-विश्वासपूर्ण मान्यताओं को लगातार बढ़ावा देने का काम सचेतन करती रहती है। राजनेताओं व पूँजीपतियों के साथ इनके सीधे सम्बन्ध तो होते ही हैं, साथ-साथ ये खुद भी नेतागिरी करने और पूँजीपति बनने में हाथ आज़माइश करते हैं। हरियाणा के विधान सभा चुनाव से पहले खुद भाजपा के अमित शाह ने विधायक के प्रत्याशियों के साथ डेरा सच्चा सौदा के बाबा के सामने दण्डवत की और चुनाव जीतने के बाद भी दो दर्जन विधायक धन्यवाद ज्ञापित करने पहुँचे थे। ज्ञात हो इन बाबा पर भी हत्या, बलात्कार और अपने करीब 300 चेलों को नपुंसक बनाने के मामले चल रहे हैं।

आज के समय तार्किकता और वैज्ञानिक नज़रिये के प्रचार की बेहद ज़रूरत है। अन्धविश्वास और कूपमण्डूकता को इस तरह के प्रचार के द्वारा एक हद तक ख़त्म किया जा सकता है। लेकिन ऐसे पाखण्डियों के पैदा होने की ज़मीन मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था खुद मुहैया करवाती है। ऐसे बाबाओं और इनके द्वारा फलाये जा रहे अन्धविश्वास के जाल को तब तक नहीं नेस्तनाबूत किया जा सकता, जब तक इन्हें पैदा करने वाली सामाजिक व्यवस्था को न ख़त्म कर दिया जाये।

– रमेश

फ़ॉक्सकॉन के मज़दूरों का नारकीय जीवन

चीन की फ़ॉक्सकॉन कम्पनी एप्पल जैसी कम्पनियों के लिए महँगे इलेक्ट्रॉनिक और कम्प्यूटर के साजो-सामान बनाती है। इसके कई कारख़ानों में लगभग 12 लाख मज़दूर काम करते हैं। यहाँ जिस ढंग से मज़दूरों से काम लिया जाता है उसके चलते 2010 से 2014 तक ही में 22 ख़ुदकुशी की घटनाएँ सामने आयीं और कई ऐसी घटनाओं को दबा दिया गया। दुनियाभर में "कम्युनिस्ट" देश के तौर पर जानेवाले चीन का पूँजीवाद इससे ज़्यादा नंगे रूप में ख़ुद को नहीं दिखा सकता था। चीन दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक है। परन्तु बाज़ारों में पटे सस्ते चीनी माल चीन के मज़दूरों के हालात नहीं बताते हैं। पर फ़ॉक्सकॉन की घटना पूरे चीन की दुर्दशा बताती है। फ़ॉक्सकॉन चीन का सबसे बड़ा एक्सपोर्टर है आईफ़ोन, आईपैड, एक्स बॉक्स, प्ले स्टेशन जैसे महँगे सामान बनाता है। दिनभर में मज़दूरों को एक जगह बैठकर मोबाइल और लैपटॉप के महीन पुर्ज़ों को असेम्बली लाइन पर 12-12 घण्टे तक बनाने का काम करना पड़ता है। जब एप्पल कम्पनी कोई नया आईफ़ोन बाज़ार में उतारती है तो इस माँग की पूर्ति के लिए मज़दूरों से हफ़्तेभर में 120 घण्टे से ऊपर काम कराया जाता है। यही काम 24 घण्टे और सातों दिन चलता है। फ़ैक्टरी में मैनेजर, इंस्ट्रक्टर और गार्ड गुण्डों की तरह व्यवहार करते हैं। ग़लती होने पर मज़दूरों को सबके बीच बुलाकर ज़लील किया जाता है। हर दिन काम से पहले कम्पनी का उत्पादन बढ़ाने के लिए जोशीले भाषण दिये जाते हैं और काम के वक़्त भी उत्पादन बढ़ाने की अपीलें दी जाती हैं। अनुशासन बरतने के पोस्टरों से पूरी फ़ैक्टरी पटी पड़ी है। मज़दूरों को कम्पनी ही अपने कैम्पस पर रहने की जगह देती है। इन्हें जेल ही कहा जाये तो बेहतर होगा। एक कमरे में कई लोग ठुँसकर रहते हैं। ऊपर से उनके हर क़दम को सेक्युरिटी कैमरे देखते रहते हैं। हर जगह गार्ड और कम्पनी मज़दूरों पर नज़र रखती है। फ़ॉक्सकॉन के जेलनुमा होस्टलों में मज़दूरों के बीच तमाम धर्मगुरु, कौंसिलर और डॉक्टर भी घूमते हैं जो मज़दूरों को इस जीवन को जीने का पाठ पढ़ाते हैं। और अगर बात उनके बस से निकलती दिखती है तो ऐसे मज़दूरों को सीधे पागलों के अस्पताल भेज दिया जाता है। 2010 में हुई 14 आत्महत्याओं के बाद जब दुनियाभर में फ़ॉक्सकॉन की आलोचना हुई तो फ़ॉक्सकॉन ने मज़दूरों के काम के हालात में सुधार करने की जगह ऐसी व्यवस्था की कि मज़दूर आत्महत्या न कर पायें। स्टील के जाल से मज़दूरों के होस्टलों को घेर लिया गया है और खिड़कियों पर भी स्टील की रोड लगा दी गयी हैं, जिससे कि मज़दूर कूदकर आत्महत्या न कर पायें! काम पर रखे जाते वक़्त मज़दूरों से काग़ज़ पर दस्तख़त करवाया जाता है कि वे आत्महत्या नहीं करेंगे और अगर करते हैं तो इसके लिए फ़ॉक्सकॉन ज़िम्मेदार नहीं होगी। 2014 में आत्महत्या करने वाले फ़ॉक्सकॉन के मज़दूर लिझी ने अलगाव को शब्दों में ढालते हुए कहा था कि वे अपने 'युवा कब्रिस्तान की रखवाली' कर रहे हैं। यही आज हर मज़दूर कर रहा है पर साथ ही विद्रोह का जज़्बा भी पाल रहा है और यह अब अभिव्यक्त भी हो रहा है। अक्टूबर महीने में ही करीब 1000 मज़दूर वेतन बढ़ोतरी और कार्यस्थल पर सुविधाओं के लिए हड़ताल पर चले गये थे। पिछले कुछ सालों में फ़ॉक्सकॉन ही नहीं चीनभर में मज़दूरों के संघर्षों में तेज़ी आ रही है। यह संघर्ष तब तक चलेगा जब तक युवा मुनाफ़ाखोर व्यवस्था को ही कब्रिस्तान में नहीं पहुँचा देते। **- सनी**

फ़ॉक्सकॉन के मज़दूर की कविताएँ

ये कविताएँ चीन की फ़ॉक्सकॉन कम्पनी में काम करने वाले एक प्रवासी मज़दूर जू लिझी (xu lizhi) ने लिखी हैं। लिझी ने 30 सितम्बर 2014 को आत्महत्या कर ली थी। लेकिन लिझी की मौत आत्महत्या नहीं है, एक नौजवान से उसके सपने और उसकी जिजीविषा छीनकर इस मुनाफ़ाख़ोर निज़ाम ने उसे मौत के घाट उतार दिया। लिझी की कविताओं का एक-एक शब्द चीख़-चीख़कर इस बात की गवाही देता है। आज भी दुनियाभर में लिझी जैसे करोड़ों मज़दूर अपने जीवन के लिए संघर्ष कर रहे हैं। लिझी की कविताओं के बिम्ब उस नारकीय जीवन और उस अलगाव का खाका खींचते हैं जो यह मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था थोपती है और इंसान को अन्दर से खोखला कर देती है।

1.
मैंने लोहे का चाँद निगला है

मैंने लोहे का चाँद निगला है
वो उसको कील कहते हैं
मैंने इस औद्योगिक कचरे को,
बेरोज़गारी के दस्तावेज़ों को निगला है,
मशीनों पर झुका युवा जीवन अपने समय से
पहले ही दम तोड़ देता है,
मैंने भीड़, शोर-शराबे और बेबसी को निगला है।
मैं निगल चुका हूँ पैदल चलने वाले पुल,
ज़ंग लगी ज़िन्दगी,
अब और नहीं निगल सकता
जो भी मैं निगल चुका हूँ वो अब मेरे गले से निकल
मेरे पूर्वजों की धरती पर फैल रहा है
एक अपमानजनक कविता के रूप में।

2.
एक पेंच गिरता है ज़मीन पर

एक पेंच गिरता है ज़मीन पर
ओवरटाइम की इस रात में
सीधा ज़मीन की ओर, रोशनी छिटकता
यह किसी का ध्यान आकर्षित नहीं करेगा
ठीक पिछली बार की तरह
जब ऐसी ही एक रात में
एक आदमी गिरा था ज़मीन पर

3.
मैं लोहे-सा सख़्त असेम्बली लाइन के पास खड़ा रहता हूँ

मैं लोहे-सा सख़्त असेम्बली लाइन के पास
खड़ा रहता हूँ
मेरे दोनों हाथ हवा में उड़ते हैं
कितने दिन और कितनी रातें
मैं ऐसे ही वहाँ खड़ा रहता हूँ
नींद से लड़ता।

4.
मैं एक बार फिर समुद्र देखना चाहता हूँ

मैं एक बार फिर समुद्र देखना चाहता हूँ, बीत चुके
आधे जीवन के आँसुओं के विस्तार को परखना
चाहता हूँ
मैं एक और पहाड़ पर चढ़ना चाहता हूँ,
अपनी खोई हुई आत्मा को वापिस ढूँढ़ना चाहता हूँ
मैं आसमान को छूकर उसके हल्के नीलेपन को
महसूस करना चाहता हूँ
पर ऐसा कुछ भी नहीं कर सकता,
इसीलिए जा रहा हूँ मैं इस धरती से
किसी भी शख़्स जिसने मेरे बारे में सुना हो
उसे मेरे जाने पर ताज्जुब नहीं होना चाहिए
न ही दुख मनाना चाहिए
मैं ठीक था जब आया था और जाते हुए भी ठीक हूँ

5.
मशीन भी झपकी ले रही है

मशीन भी झपकी ले रही है
सीलबन्द कारख़ानों में भरा हुआ है बीमार लोहा
तनख़्वाहें छिपी हुई हैं पर्दों के पीछे
उसी तरह जैसे जवान मज़दूर अपने प्यार को
दफ़न कर देते है अपने दिल में,
अभिव्यक्ति के समय के बिना
भावनाएँ धुल में तब्दील हो जाती हैं
उनके पेट लोहे के बने हैं
सल्फ़युरिक, नाइट्रिक एसिड जैसे गाढ़े तेज़ाब से भरे
इससे पहले के उनके आँसुओं को गिरने का
मौक़ा मिले
ये उद्योग उन्हें निगल जाता है
समय बहता रहता है, उनके सिर धूँध में खो जाते हैं
उत्पादन उनकी उम्र खा जाता है
दर्द दिन और रात ओवरटाइम करता है
उनके वक़्त से पहले एक साँचा उनके शरीर से चमड़ी
अलग कर देता है
और एल्युमीनियम की एक परत चढ़ा देता है
इसके बावजूद भी कुछ बच जाते हैं और बाक़ी
बीमारियों की भेंट चढ़ जाते हैं
में इस सब के बीच ऊँघता पहरेदारी कर रहा हूँ
अपने यौवन के कब्रिस्तान की।

(ये कविताएँ Libcom.org वेबसाइट से ली गयी हैं, जिन्होंने चीनी भाषा से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है। अंग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद **सिमरन** ने किया है।

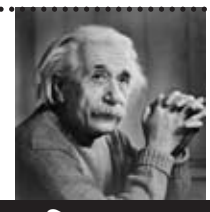

महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटीन

"निजी पूँजी कुछ हाथों में केन्द्रित होते जाने की प्रवृत्ति रखती है। इसका नतीजा निजी पूँजी का एक ऐसा अल्पतंत्र होता है जिसकी भयंकर शक्ति को लोकतांत्रिक ढंग से संगठित राजनीतिक समाज भी प्रभावी ढंग से नियंत्रित नहीं कर सकता। यह इसलिए सच है क्योंकि विधान मण्डलों के सदस्य राजनीतिक पार्टियों द्वारा चुने जाते हैं, जो निजी पूँजीपतियों के धन से चलती हैं या अन्य तरीकों से उन्हीं के प्रभाव में होती हैं। ये पार्टियाँ, व्यवहार में, चुनने वाली जनता को विधानमण्डल से काट देने का काम करती हैं। नतीजा यह होता है कि जनता के प्रतिनिधि वास्तव में आबादी के वंचित तबकों के हितों की पर्याप्त रूप से हिफ़ाज़त नहीं करते। इतना ही नहीं, वर्तमान परिस्थितियों में, निजी पूँजीपति हर हाल में, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, जानकारी के मुख्य स्रोतों (प्रेस, रेडियो, शिक्षा) को नियंत्रित करते हैं। इसलिए एक-एक नागरिक के लिए अकेले सही नतीजों तक पहुँचना और अपने राजनीतिक अधिकारों का होशियारी के साथ इस्तेमाल करना बेहद कठिन, बल्कि ज़्यादातर मामलों में, लगभग असम्भव हो जाता है।"

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

तेल की क़ीमतों में गिरावट का राज़

पिछले कुछ महीनों में पेट्रोल और डीज़ल की क़ीमतों में आश्चर्यजनक ढंग से गिरावट देखने को आ रही है। भारतीय जनता पार्टी और नरेन्द्र मोदी के समर्थक नयी सरकार की नीतियों को इस गिरावट के लिए ज़िम्मेदार बता रहे हैं। लेकिन पेट्रोल और डीज़ल की क़ीमतों में आयी गिरावट की असली वजह की पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि ये क़ीमतें जितनी गिरनी चाहिए थीं, भारत में उतनी नहीं गिरी हैं। इस साल जून के महीने से ही अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की क़ीमत में गिरावट का जो सिलसिला शुरू हुआ था, वह अभी भी थमने का नाम नहीं ले रहा है। जून में अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की क़ीमत 115 डॉलर प्रति बैरल थी जो अब गिरकर 66 डॉलर प्रति बैरल के पास पहुँच चुकी है, यानी कि कच्चे तेल की क़ीमतों में 40 प्रतिशत से ज़्यादा की गिरावट हुई है। लेकिन भारत में पेट्रोल की क़ीमत में सिर्फ़ 11.31 प्रतिशत और डीज़ल की क़ीमत में 8.32 प्रतिशत गिरावट हुई है। ग़ौरतलब है कि जब अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी होती है तो उसकी सबसे ज़्यादा गाज उपभोक्ता पर गिरती है। लेकिन अब जबकि अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतों में गिरावट हो रही है तो इसका लाभ उपभोक्ता से ज़्यादा तेल कम्पनियों को हो रहा है।

क्यों गिर रही हैं अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतें?

अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की क़ीमतों में आयी भारी गिरावट के कारण आर्थिक और भूराजनीतिक हैं। आर्थिक पटल पर माँग और आपूर्ति दोनों ही कारक अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतों में हो रही गिरावट के लिए ज़िम्मेदार हैं। यूरोप (विशेषकर इटली और ग्रीस) और जापान की अर्थव्यवस्थाएँ पिछले कई वर्षों से लगातार मन्दी का शिकार रही हैं और अभी तक वे उससे उबर नहीं पायी हैं। इसके अलावा चीन की अर्थव्यवस्था पर भी मन्दी के काले बादल मँडरा रहे हैं। विश्व की इन प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में चल रही मन्दी की वजह से विश्व स्तर पर तेल की माँग कम हुई है जिसने अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल की क़ीमतों में गिरावट में एक अहम भूमिका अदा की है।

माँग कम होने के साथ ही कच्चे तेल की आपूर्ति में बढ़ोत्तरी भी अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में उसकी क़ीमतों में हुई गिरावट के लिए ज़िम्मेदार है। कच्चे तेल की आपूर्ति में बढ़ोत्तरी की सबसे प्रमुख वजह उत्तरी अमेरिका में शेल नामक चट्टानों के बीच से तेल के उत्पादन की नयी क्रियाविधि की खोज रही है। पिछले कुछ वर्षों में अमेरिका के टेक्सस और उत्तरी डकोता राज्यों में फ्रैकिंग नामक प्रक्रिया से हाइड्रॉलिक जल दबाव के ज़रिये शेल चट्टानों की परतों के बीच से तेल निकालने की तकनीक के ज़रिये तेल का उत्पादन हो रहा है जिसकी वजह से अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की आपूर्ति बढ़ गयी है।

आमतौर पर जब अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतें गिरने लगती हैं तो ओपेक (तेल उत्पादक देशों का समूह जिसमें सऊदी अरब, ईरान, वेनेजुएला, इराक़ और कतर जैसे देश शामिल हैं) अपने तेल उत्पादन में कमी लाकर तेल की आपूर्ति कम कर देता है जिससे तेल के मूल्य में गिरावट रुक जाती है। परन्तु इस बार ओपेक ने तेल उत्पादन में कटौती नहीं करने का फ़ैसला किया है। इसकी वजह भूराजनीतिक है। सऊदी अरब जो दुनिया का सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश है, अमेरिका में शेल तेल की खोज को अपने भविष्य के लिए एक ख़तरे के रूप में देखता है। यही वजह है कि उसने इस बार तेल उत्पादन में कटौती करने से मना कर दिया ताकि तेल की क़ीमतें इतनी नीचे गिर जायें कि शेल तेल उत्पादन (जो अपेक्षाकृत अधिक ख़र्चीला है) मुनाफ़े का व्यवसाय न रह पाये और इस प्रकार अन्तरराष्ट्रीय तेल बाज़ार में सऊदी अरब का दबदबा बना रहे। साथ ही साथ इस नीति से ईरान और रूस की अर्थव्यवस्थाओं पर ख़तरे के बादल मँडराने लगे हैं क्योंकि तेल उत्पादन इन दोनों ही देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है।

अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल की क़ीमतों में गिरावट के निहितार्थ

अगर विश्व अर्थव्यवस्था की बात की जाये तो तेल की क़ीमतों में इस क़दर गिरावट विश्व पूँजीवाद के संकट को हल करने की बजाय उसको बढ़ाता ही दिख रहा है। विशेषकर रूस, ईरान और वेनेजुएला

(पेज 2 पर जारी)

मोदी सरकार के अगले साढ़े चार वर्षों के बारे में वैज्ञानिक तथ्य-विश्लेषण आधारित कुछ भविष्यवाणियाँ!

● कात्यायनी

आने वाले चार-पाँच वर्षों के दौरान :

– विदेशों में जमा काला धन का एक पाई भी नहीं आयेगा। देश के हर नागरिक के खाते में 15 लाख रुपये आना तो दूर, फूटी कौड़ी भी नहीं आयेगी।

– कुल काले धन का 80 फ़ीसदी तो देश के भीतर है। उसमें भारी बढ़ोत्तरी होगी।

– विदेशों से आने वाली पूँजी अतिलाभ निचोड़ेगी और बहुत कम रोज़गार पैदा करेगी। निजीकरण की अन्धाधुँध मुहिम में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को हड़ताली देशी-विदेशी कम्पनियाँ जमकर छँटनी करेगी। पुराने उद्योगों में बड़े पैमाने पर तालाबन्दी होगी। नतीजतन न केवल ब्लू कॉलर नौकरियों बल्कि व्हाइट कॉलर नौकरियों की भी अभूतपूर्व कमी हो जायेगी और इंजीनियरों, तकनीशियनों, क्लर्कों की नौकरियाँ भी मुहाल हो जायेंगी। बेरोज़गारी की दर नयी ऊँचाइयों पर होंगी और छात्रों-युवाओं के आन्दोलन बड़े पैमाने पर फूट पड़ेंगे।

– मोदी के "श्रम सुधारों" के परिणामस्वरूप मज़दूरों के रहे-सहे अधिकार भी छिन जायेंगे, असंगठित मज़दूरों के अनुपात में और अधिक बढ़ोत्तरी हो जायेगी, बारह-चौदह घण्टे सपरिवार खटने के बावजूद मज़दूर परिवारों का जीना मुहाल हो जायेगा। नतीजतन औद्योगिक क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर मज़दूर असन्तोष उग्र संघर्षों के रूप में फूट पड़ेंगे। दलाल और सौदेबाज़ यूनियनें अप्रासंगिक हो जायेंगी। इन स्वत:स्फूर्त मज़दूर उभारों की क्रान्तिकारी वाम की कोई धारा यदि सही राजनीतिक लाइन से लैस हो, तो सही दिशा में आगे बढ़ा सकती है।

– जल, जंगल, ज़मीन, खदान : सब कुछ पहले से कई गुना अधिक बड़े पैमाने पर देशी-विदेशी कॉरपोरेट मगरमच्छों को सौंपे जायेंगे, लोगों को बन्दूक़ की नोंक पर विस्थापित किया जायेगा और उसके हर प्रतिरोध को बर्बरतापूर्वक कुचलने की कोशिश की जायेगी। नया भूमि अधिग्रहण क़ानून लागू होने के बाद किसानों को उनकी जगह-ज़मीन से बलात बेदख़ल करना एकदम आसान हो जायेगा। खेती में तेज़ी से बढ़ती देशी-विदेशी पूँजी की पैठ छोटे किसानों के सर्वहाराकरण और विस्थापन में अभूतपूर्व तेज़ी ला देगी। शहरों में प्रवासी मज़दूरों और बेरोज़गारों का हुजूम उमड़ पड़ेगा।

– विश्वव्यापी मन्दी और आर्थिक संकट की जिस नयी प्रचण्ड लहर की भविष्यवाणी दुनियाभर के अर्थशास्त्री कर रहे हैं, वह तीन-चार वर्षों के भीतर भारतीय अर्थतन्त्र को एक भीषण दुश्चक्रीय निराशा के भँवर में फँसाने वाली है। महँगाई और बेरोज़गारी तब विकराल हो जायेगी। व्यवस्था का क्रान्तिकारी संकट अपने घनीभूततम और विस्फोटक रूप में सामने होगा।

– उग्र जनउभारों को कुचलने के लिए सत्ता पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों का खुलकर इस्तेमाल करेगी। भविष्य के "अनिष्ट संकेतों" को भाँपकर मोदी सरकार अभी से पुलिस तन्त्र, अर्द्धसैनिक बलों और गुप्तचर तन्त्र को चाक-चौबन्द बनाने पर सबसे अधिक बल दे रही है। घनीभूत संकट के दौरान शासक वर्गों की राजनीतिक एकजुटता भी छिन्न-भिन्न होने लगी और बढ़ती अराजकता भारतीय राज्य को एक "विफल राज्य" जैसी स्थिति में भी पहुँचवा सकता है। जन-संघर्षों और विद्रोहों को कुचलने के लिए सन्नद्ध दमन तन्त्र भारतीय राज्य को एक 'पुलिस स्टेट' जैसा बना देगा।

– मोदी के अच्छे दिनों के वायदे का बैलून जैसे-जैसे पिचककर नीचे उतरता जायेगा, वैसे-वैसे हिन्दुत्व की राजनीति और साम्प्रदायिक तनाव एवं दंगों का उन्मादी खेल ज़ोर पकड़ता जायेगा ताकि जन एकजुटता तोड़ी जा सके। अन्धराष्ट्रवादी जुनून पैदा करने पर भी पूरा ज़ोर होगा। पाकिस्तान के साथ सीमित या व्यापक सीमा संघर्ष भी हो सकता है, क्योंकि जनाक्रोश से आतंकित दोनों ही देशों के संकटग्रस्त शासक वर्गों को इससे राहत मिलेगी।

लुब्बेलुबाब यह कि मोदी सरकार की नीतियों ने उस ज्वालामुखी के दहाने की ओर भारतीय समाज के सरकते जाने की रफ़्तार को काफ़ी तेज़ कर दिया है, जिस ओर घिसटने की यात्रा गत लगभग तीन दशकों से जारी है। भारतीय पूँजीवाद का आर्थिक संकट ढाँचागत है। यह पूरे सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर रहा है। बुर्जुआ जनवाद का राजनीतिक-संवैधानिक ढाँचा इसके दबाव से चरमरा रहा है। मोदी सरकार पाँच वर्षों के बाद लोगों के सामने अलग नंगी खड़ी होगी। भारत को चीन और अमेरिका जैसा बनाने के सारे दावे हवा हो चुके रहेंगे। भक्तजनों को मुँह छुपाने को कोई अँधेरा कोना नहीं नसीब होगा। फिर 'एण्टी-इन्कम्बेंसी' का लाभ उठाकर केन्द्र में चाहे कांग्रेस की सरकार आये या तीसरे मोर्चे की शिवजी की बारात और संसदीय वामपन्थी मदारियों की मिली-जुली जमात, उसे भी इन्हीं नवउदारवादी नीतियों को लागू करना होगा, क्योंकि कीन्सियाई नुस्ख़ों की ओर वापसी अब सम्भव ही नहीं।

आने वाले वर्षों में व्यवस्था के निरन्तर जारी असाध्य संकट का कुछ-कुछ अन्तराल के बाद सड़कों पर विस्फोट होता रहेगा। जब तक साम्राज्यवाद विरोधी पूँजीवाद विरोधी सर्वहारा क्रान्ति की नयी हरावल शक्ति नये सिरे से संगठित होकर एक नये भविष्य के निर्माण के लिए आगे नहीं आयेगी, देश अराजकता के भँवर में गोते लगाता रहेगा और पूँजीवाद का विकृत से विकृत, वीभत्स से वीभत्स, बर्बर से बर्बर चेहरा हमारे सामने आता रहेगा।

काकोरी केस के शहीदों की 87वीं बरसी (19 दिसम्बर) पर

– अब देशवासियों के सामने यही प्रार्थना है कि यदि उन्हें हमारे मरने का जरा भी अफसोस है तो वे जैसे भी हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करें – यही हमारी आखिरी इच्छा थी, यही हमारी यादगार हो सकती है।

(**शहीद रामप्रसाद बिस्मिल** के अन्तिम सन्देश से, जिसे भगतसिंह ने 'किरती' पत्र में जनवरी, 1928 में प्रकाशित कराया था)

– हिन्दुस्तानी भाइयो! आप चाहे किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के मानने वाले हों, देश के काम में साथ दो। व्यर्थ आपस में न लड़ो।

(फाँसी के ठीक पहले फैजाबाद जेल से भेजे गये काकोरी काण्ड के शहीद **अशफाक उल्ला** के अन्तिम सन्देश से)

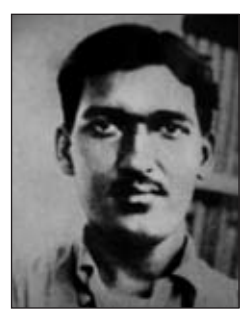

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006